हरियाणा लोकमञ्च की कहानियाँ

राजाराम शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—६९

हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ

राजाराम शास्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५८
मूल्य ढाई रुपया

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

विषय-क्रम

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
१९५८
मूल्य ढाई रुपया

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

विषय-क्रम

भूमिका

हरियाणा लोक मंच उतना ही पुराना है जितना कि किसी भी भारतीय प्रदेशका, और शायद कुछ प्रदेशोंके लिए उससे भी पुराना। आजसे सवा दो सौ वर्ष पूर्व भाटके घरमें उत्पन्न किशनलाल नामके व्यक्तिने इसका आरम्भ किया और देखते-ही-देखते वह हरियाणा भरमें प्रसिद्ध हो गया। उससे पूर्व नक्कालों और वेश्याओंका बोल बाला था। विवाह-शादी और किसी प्रसन्नताके अवसर पर इन्हें ही मनोरंजनका एकमात्र साधन माना जाता था। वेश्याएँ नाचती-गातीं और मुजरेके रूपमें उनपर खना-खन रुपया बरसता और नक्काल समाजके किसी भी अंगपर नकलें दिखाते। उनकी नकलके लक्ष्य रहते कंजूस, बूढ़ेका विवाह आदि। उनकी व्यंजना शक्ति अपनी चरम सीमापर थी, जिसके लिए वे प्रसिद्ध थे। जिसपर उनकी चोट पड़ती वह हँसता और तिलमिलाता। जो व्यक्ति उन्हें रुपया देकर मनोरंजनके लिए बुलाता, भरी सभामें बिना किसी झिझकके वह भी उनके व्यंग्यका लक्ष्य हुए बिना न रह पाता। किन्तु उनका व्यंग्य मीठा था, चुटीला था और हँसाते-हँसाते लोगोंको लोट-पोट करनेकी सामर्थ्य रखता था। जिसे मार पड़ती वह भी वाह-वाह कर उठता, इसीलिए समाज उन्हें सहन किये जा रहा था। उनकी चोट सहन करता और फिर भी उन्हें बार-बार अपने यहाँ बुलाता और यही उन लोगोंको भरण-पोषणका आधार था।

हरियाणा प्रदेशमें किशनलाल भाटने जिस लोकमञ्चकी स्थापना की वह सतत जनरञ्जन करता आ रहा है। इसके उदयके पश्चात् मुजरा और नकल धीरे-धीरे इस प्रदेशमें कम होते गये जिसका कारण थी लोगोंकी मानसिक स्थितिकी अनुकूलता। वेश्याओंके मुजरे खुले स्थानों पर होते पर

उससे जिस प्रकार व्यभिचार फैलता उसे वृद्ध और विचारक पसन्द न करते थे। नक्कालोंके व्यंग्य-बाण भी वे इसी लिए सहे जा रहे थे कि इसके अतिरिक्त सामूहिक मनोरञ्जनका उनके पास और कोई साधन न था। किन्तु जब उन्हें इस प्रकारका साधन उपलब्ध हुआ तभी मुजरों और नकलोंकी ओरसे अपना ध्यान हटा लिया।

इतना सब होते हुए भी ये दोनों बहुत देर तक इसके साथ-साथ चलते रहे। लगभग दो सौ वर्ष तक अर्थात् गत बीस पचीस वर्ष पूर्व तक कभी-कभी और कहीं-कहीं मुजरे और नकल देखनेको मिल जाते थे, पर उनकी जनप्रियता जैसे घटनी आरम्भ हुई फिर सँभल न सकी। किन्तु दम तोड़ते-तोड़ते भी दो सौ वर्ष ले गई।

हरियाणा लोकमञ्चकी दृढ़ता और धीरे-धीरे मुजरों और नकलोंकी समाप्तिके कारण सामान्य जनताको पिछली दोनों कलाओंकी मृत्यु पर खेद होना तो दूर किसीको उसका आभास भी न हुआ।

हरियाणा लोकमञ्च दिन-प्रतिदिन सँवरता और सुधरता रहा है। वह आज भी गाँव-गाँवमें अपनी विशेषताके कारण लोकप्रिय है। पन्द्रह-बीस चलती-फिरती मण्डलियाँ आज भी नित्य मञ्च पर आती हैं जिन्हें देखने पाँच-पाँच सात-सात और दस-दस कोसकी जनता हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो जाती है। उनके लिए न विज्ञापनकी आवश्यकता है न किसी प्रकारके अन्य प्रचारके साधनकी। वह तो एक कानसे दूसरे कान अपने आप होता जाता है और ढोल तथा नक्कारे पर चोट पड़नेके साथ हजारोंकी संख्यामें जनता एकत्र हो जाती है। जनताके लिए फर्श प्रभुकी बिछाई असीम धरती और सायबान उसीका रचा अनन्त आकाश होता है। मञ्चके चारों ओर दूर-दूर तक सिर ही सिर ठाठें मारते दिखाई पड़ते हैं। मञ्चके लिए न पर्दोंकी आवश्यकता, न दृश्य परिवर्तनकी। उसका प्रसाधन-गृह भी वही मञ्च है और अभिनय स्थान भी वही, दशों दिशाओंसे

खुला। हरियाणा लोकमञ्चकी आलोचना करनेसे पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि मञ्च क्या है ? और उसके प्रसाधन क्या हैं ?

रंगमञ्च अभिनेय स्थान है जिसकी रूपरेखा वास्तुकलामर्मज्ञों द्वारा अनेक प्रकारसे वर्णित हुई है। प्राचीन लक्षण ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे पता चलता है कि उस कालमें रङ्गमञ्चके प्रायः दो प्रकार अधिक प्रचलित थे। एक घरेलू मञ्च जो प्रायः राजकीय मनोरञ्जनके काम आता था। जिसमें गिने-चुने दर्शक भाग लेते थे और जो छोटा और चौकोर होता था। उसकी लम्बाई और चौड़ाई एक समान होती थी और मध्यमें केवल एक यवनिका डाल कर काम चला लिया जाता था। इसके अभिनेता प्रायः राजपुरुष अथवा राजपरिवारके ही व्यक्ति होते थे। दूसरे प्रकारका मञ्च इससे बड़ा होता था। उसकी गहराई-चौड़ाईसे दुगुनी होती थी और सामने पर्याप्त खुला स्थान रहता था जहाँ युद्ध जैसे दृश्य आसानीसे दिखाये जा सकें। मञ्चपर आवश्यकतानुसार दो अथवा उससे अधिक यवनिका रहती थीं जिनसे दृश्य परिवर्तनमें सुविधा रहे। जो दृश्य दर्शकोंके सामने है, उससे आगेके दृश्य यवनिकाके पीछे तैयार होते रहते थे और इस प्रकार बड़े-बड़े प्रसाधनयुक्त दृश्योंके परिवर्तनमें भी जनताको व्यवधान प्रतीत न होता था। न दो अंकोंके बीच मध्यावकाशकी आवश्यकता और न पूर्वापर कथानकमें किसी प्रकारका व्यवधान।

मंचके लिए नेपथ्य अत्युपयोगी स्थान रहा है। कितने एक दृश्य जिन्हें मंचपर नहीं दिखाया जा सकता, अथवा वे दृश्य जिन्हें मंच पर दिखाया जाना अभिप्रेत न होता और जिनका काम केवल सूचना मात्रसे चला लिया जा सकता अथवा सामूहिक कोलाहल, आग लगना, खून खरावे जैसे दृश्योंकी अवतारणाके लिए नेपथ्यको काममें लाया जाता। अभिनेताओंके गमनागमनका स्थान भी नेपथ्यके विना सिद्ध न हो सकता था। इसके अतिरिक्त अभिनेताओंके प्रसाधनगृहकी आवश्यकता भी इसी नेपथ्यसे पूरीकी जाती थी।

दर्शकोंके लिए सीढ़ीके समान बैठनेका प्रबन्ध किया जाता था ताकि प्रत्येक दर्शककी मंचतक दृष्टि आसानीसे पहुँच सके। दर्शकोंके स्थानके अनेक विभाग किये जाते और हर विभागके स्तम्भोंका रंग भिन्न होता था और उन्हीं रंगोंके आधार पर दर्शक वर्गविशेषके लिए निश्चित अपने स्थानको पहचान लेता और वह वहीं जमकर बैठता था।

शताब्दियों तक इसी आधार पर मंचका उपयोग होता रहा। किन्तु इस प्रकारका मंच बहुधनसाध्य था और शायद इसीलिए देशकी आर्थिक और राजनैतिक स्थितिके कारण धीरे-धीरे वह मिट-सा गया। इस प्रकारके मंचकी तैयारीके लिए प्रभूत धन और समयकी आवश्यकता थी।

हरियाणा लोकमंच इन सब आडम्बरोंसे दूर रहा। उसके संस्थापकों-के हृदयने जैसे उन्हें पहले ही सचेत कर दिया कि मंचकी मृत्युका कारण ये प्रभूत साधन ही हैं, जिनसे उसका आकर्षण बढ़ता है। वह आकर्षण भी उसी प्रकारका है जैसे किसी कोमलांगिनीकी सज्जाके लिए उसे मनो अलंकारोंसे अलंकृत करनेका यत्न किया गया हो और वे अलंकार ही उसकी मृत्युका कारण बन गये हों। और उसके अभिभावुकोंने पाया हो कि अब उनके हाथ केवल अलंकार ही लगे हैं, उसके बीचकी आत्मा कहीं दूर विहार करने चली गई है। हरियाणा लोक मंचके संस्थापकोंने जैसे इस तथ्यको जाने-अनजाने समझ लिया हो और दूधका जला छाछको फूँक-फूँकके पिये के अनुसार उन्होंने मंचके आडम्बरको आरम्भसे ही उठाः-कर ताक पर धर दिया। उन्होंने मंचकी लम्बाई-चौड़ाई मापनेका कष्ट उठाया, न प्रसाधनगृह और नेपथ्य निर्माणका। उनका मंच तो चारों ओरसे खुला, चार छः तख्त जोड़कर बनाया गया। उसीपर अभिनेता, वाद्यवादक और प्रसाधनका सामान रखा रहता है। अभिनेता एक-एक कर अपने स्थानसे उठते हैं। तख्तपर चारों ओर घूम-घूमकर अपना अभि-नय करते हैं जो अधिकतर गायनके साथ होता है। और अभिनय समाप्त होनेपर अपने स्थानपर बैठ जाते हैं। आवश्यकता पड़नेपर साधुका वेश

धारण करना हो अथवा पुरुषसे स्त्री और स्त्रीसे पुरुषका रूप बदलना हो, तो वहीं सब दर्शकोंके सामने जहाँ एक ओर अन्य पात्र अपना अभिनय कर रहे होते हैं दूसरी ओर वह पुरुषसे स्त्री बननेके लिए लहंगा पहननेमें लगा होता है, अथवा जटा और दाढ़ी-मूँछ लगा कर कानोंमें मुद्रा पहनकर साधु बन जाता है और अपने अवसर पर वह वहींसे उठकर अभिनय करने लगता है। और शायद यही सरलता और प्रसाधनाधिक्यकी अनावश्यकता ही इस रंगमंचको जीवित रखनेमें सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्राचीन रंगमंचके समान इसके लिए किसी विशेष कक्षकी आवश्यकता नहीं। वह तो किसी भी खुले स्थान पर जहाँ दर्शक लोग आसानीसे समा सकें आरम्भ किया जा सकता है। प्रसाधनके अनाधिक्यके कारण ही ये मण्डलियाँ चलती-फिरती और स्थान-स्थान पर अपने प्रदर्शन करती हैं। हिन्दी रंगमंच जिसकी स्थापनाके अभी तक प्रयोग चल रहे हैं और जिसके सामने बहु प्रसाधन युक्त कक्षोंकी समस्या मुँह बाये खड़ी है, इन लोक-मंचोंसे यदि कुछ सीख सके तो शायद उसके पक्षमें उपयोगी सिद्ध हो।

संभव है कुछ लोग ग्राम्य वस्तु कहकर इस ओर ध्यान देनेका कष्ट न करें किन्तु विचारणीय यह है कि दर्शकको हमें क्या देना है? सुन्दरीका बाह्याडम्बर अथवा उसका सरल, हृदयहारी रूप और स्वच्छ आत्मा? निश्चय ही किसी कुरूपाको प्रसाधनबहुला होते हुए भी कोई पसन्द न करेगा। दूरकी तड़क-भड़कके कारण संभव है कुछ मनचले उस ओर आकृष्ट हों पर निकट सम्पर्कमें आनेसे पूर्व ही वे उससे घृणा करने लगें तो कोई असम्भव नहीं। दूसरी ओर साधारण स्वच्छ वस्त्रयुक्ता कामिनी जो संभव हो तो एक-आध अलंकार भी धारण किये हो, किसका मन न हर लेगी? और यदि उस सरल सौन्दर्यमें आत्मा भी स्वच्छ छिपी हो तो निकट सम्पर्कमें आनेपर आप सदाके लिए उसके हो रहेंगे। इसलिए मंचकी आवश्यकता है सरल सौंदर्य, जो हर स्थान पर साथ दे सके,

उसका प्रसाधन उसके लिए बन्धन न होकर उसे हलका फुलका रख सके और वह जहाँ चाहे अपना सात्विक प्रदर्शन कर सके।

यह तो रही मंचके प्रसाधन और रूपकी बात। अब हमें उसकी आत्माको देखना और परखना है जिसके बिना मंच निर्जीव है, व्यर्थ है।

मञ्चका सीधा और अटूट सम्बन्ध है दृश्यकाव्यसे। दृश्य साध्य है तो मञ्च साधन। साध्यके बिना साधन और साधनके बिना साध्य कठिन ही नहीं असम्भव है। कहा जा सकता है कि मञ्चके बिना भी प्रसाद आदि प्रख्यात नाट्यकारोंने अपने प्रयोग किये। किन्तु क्या उन नाट्यकारोंकी कल्पनामें कोई मञ्च न था? क्या वे बिना मञ्चकी किसी निश्चित रूप-रेखाके अपने नाटकोंमें उनका रूप निदर्शन करते रहे? हमें मानना होगा कि प्रत्यक्ष मञ्च सम्मुख न होते हुए भी उन्होंने अपने उस हृदाकाशमें मञ्चकी स्थापना कर ली थी, जो साहित्यका उत्पत्ति-स्थल है और इस प्रकार उसी हृदाकाशमें उन्होंने मञ्च और दृश्यकाव्यका पूर्ण सामञ्जस्य कर नाटक की अवतारणा की थी।

काव्यके दो भेद हैं, दृश्य और श्रव्य। दृश्य बिना मञ्चके अधूरा है। उसका वास्तविक आनन्द मञ्चके बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। रही श्रव्यकी बात। उसे कहीं भी आरामसे बैठकर पढ़ा अथवा सुना जा सकता है, और श्रवण द्वारा ही उसका आनन्द लिया जा सकता है। श्रव्यका मञ्चसे कोई सम्बन्ध न होनेके कारण यहाँ उसके बारेमें विशेष कुछ न कह कर प्रस्तुत दृश्यकाव्यके बारेमें ही चर्चा करना उपयुक्त होगा।

दृश्यका सम्बन्ध अभिनयसे है। जिसके द्वारा अभिनेय वस्तु मंचपर प्रस्तुत की जा सकती है। अभिनयके चार प्रकार हैं।

आङ्गिक = जिसमें चेष्टाओंकी अनुकृति की जाती है।

वाचिक = जिसमें वाणीका अनुकरण किया जाता है और जिसका सम्बन्ध रूपकके कथोपकथन तत्त्वसे है।

आहार्य—नायक-नायिकाकी वेश-भूषाकी अनुकृति ।

सात्त्विक—नायक-नायिकाके परस्पर आकृष्ट होने पर प्रणय आदिके सूचक स्तम्भ, रोमाञ्च, प्रस्वेद, स्वरभंग, कम्पन, विवर्णता, अश्रुमोचन और प्रलय (मृत्यु) आदि चिह्न जो स्वाभाविकतया दोनोंके शरीरमें प्रकट होते हैं, अभिनेता द्वारा उनका प्रदर्शन ।

दृश्यकाव्यका दूसरा नाम रूपक है क्योंकि इसमें अभिनेताको नायक आदिका रूप प्रदर्शित करना होता है। प्राचीन शास्त्रकारोंने दृश्य अथवा रूपकके दस भेद और अठारह उपभेद माने हैं जिनसे प्रस्तुत स्थान पर हमें कुछ प्रयोजन नहीं ।

'काव्येषु नाटकं रम्यम्' यह प्राचीन उक्ति है जिसका कारण है श्रव्य-काव्यमें केवल कानोंका योग होना, जब कि दृश्यमें कानोंका योग आँख भी देती हैं। और आनन्दप्राप्तिमें जितनी अधिक इन्द्रियोंका योग होता है उतना ही उसके आनन्दमें भी आधिक्य होता है। श्रव्यमें वर्णित स्थानों आदिकी अवतारणा श्रोताको अपनी कल्पनामें करनी पड़ती है जो कष्टसाध्य है। जब कि नाटकमें सब दृश्य यथासम्भव जैसे-के-तैसे सामने प्रस्तुत होते हैं। उसमें दर्शककी कल्पनाको आनन्द प्राप्तिके लिए उड़ान नहीं भरनी पड़ती अपितु वह प्रत्यक्ष होती है, इसीलिए काव्योंमें नाटकको रमणीय माना है। किन्तु क्या साहित्यका आनन्द इन्द्रियजन्य है ? जिसकी परिणति प्रायः कष्टप्रद और नाशवान् होती है ? उत्तरमें हमें कहना होगा 'नहीं'। यदि काव्यकी परिणति कष्टप्रद होती तो कोई भी बार-बार उसे पढ़ने अथवा देखनेका यत्न न करता। लोकमें जिन मृत्यु, वियोग आदि दृश्योंको हम कल्पनामें भी देखना पसन्द नहीं करते, हालाँ कि नियति जीवनमें हमें वे दृश्य बार-बार देखनेको बाध्य करती है, हम साहित्यमें आये उन्हीं मृत्यु आदि प्रकरणोंको बार-बार पढ़ना और देखना पसन्द करते हैं। यह अटल तथ्य है कि दशरथकी मृत्यु और सीताका वियोग जब-जब भी अवसर मिले हम देखने जाते हैं। क्या कोई जीवनमें इस प्रकारके दृश्योंकी आवृत्तिको

जान-बूझ कर सहन करेगा ? चाहे वह घटना अपने साथ घटित न होकर अपने किसी पड़ौसीके साथ ही क्यों न घटित होती हो ? अतः यह निश्चित है कि साहित्यानन्द जिसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है किसी अंशमें भी दुःखप्रद नहीं। वह कौन-सा विलक्षण व्यापार है जो मृत्यु-सरीखे कष्टप्रद दृश्यको भी सुखप्रद बना देता है ?

कहना न होगा कि सुख-प्रसूतिका यह विलक्षण व्यापार ही साहित्यका प्राण है। जिस साहित्यमें यह व्यापार जितना ही सबल होगा उतना ही वह साहित्य विश्वजनीन और सर्वप्रशंसित होगा। यह विलक्षण व्यापार क्या है, जो दुःखमें भी आनन्दको उद्भूत करनेकी सामर्थ्य रखता है ? इसका उत्तर हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम यह समझ लें कि वह आनन्द क्या है और उसकी स्थिति कहाँ है ? वास्तविक नायकमें, जिसका अभिनेता अनुकरण कर रहा है। अभिनेतामें अथवा सामाजिक या प्रेक्षकमें।

इस बारेमें विद्वानोंमें मतभेद है। भट्ट लोल्लटका मत है कि रस वास्तविक नायक-नायिकामें रहता है और कुशल अभिनेता उनके व्यापार-का अनुकरण करते हैं, जिससे प्रेक्षक इनमें उनकी चमत्कृति देखकर आनन्दित हो जाते हैं। आद्य नाट्याचार्य श्री भरतमुनि द्वारा किये गये इस लक्षण 'विभाव, अनुभाव और संचारी भावोंके संयोगसे रसकी निष्पत्ति होती है' में 'रस निष्पत्ति' का अर्थ उनके अनुसार हुआ 'रसोत्पत्ति'। और इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भाव कारण हुए और रस कार्य। तथा इनका परस्पर कार्य-कारण संबन्ध हुआ। भट्ट लोल्लटके मता-नुसार प्रेक्षक अथवा अभिनेताके हृदयमें रसकी स्थिति नहीं।

श्री शंकु 'चित्रतुरग न्याय' से भरतमुनिके रस लक्षणमें आये 'निष्पत्ति' पदका अर्थ अनुमिति करते हैं। जैसे घोड़ेके चित्रको वास्तविक घोड़ा न होते हुए भी उसीकी आकृतिके समान होनेसे हम घोड़ा कहते हैं, इसी प्रकार अभिनेतामें रस न होते हुए भी वास्तविक नायक राम आदिका अनुकरण करनेसे हम अभिनेतामें चित्रमें अश्वके समान राम आदिका

अनुमान कर लेते हैं और फिर प्रेक्षक अभिनेताके कार्य-कलापसे चमत्कृत होकर आनन्द प्राप्त करता है। अतः प्रेक्षक और अभिनेताके हृदयमें रसकी स्थिति न होते हुए भी उसे रसकी अनुभूति अनुमानसे होती है। इसीको अनुमितिवाद भी कहा जाता है।

भट्ट नायकके मतमें रसकी वास्तविक स्थिति प्रेक्षकके हृदयमें है। और स्थायीभाव रति आदिसे रसोत्पत्ति तक तीन प्रक्रियाएँ होती हैं जिनको 'अभिधा,' 'भावकत्व' और 'भोजकत्व' नामसे निदर्शित किया जाता है।

उनके मतानुसार अभिधा द्वारा वाक्यके सामान्य अर्थका बोध होता है तत्पश्चात् 'भावकत्व' शक्ति द्वारा हम उस अर्थका साधारणीकरण कर लेते हैं। हम अनुभव करते हैं कि नायकको जिस स्थितिमें जो अनुभूति हुई उस स्थितिमें सर्व-साधारणको वही अनुभूति संभव है। अतः वह अनुभूति नायक अकेलेकी न रहकर सर्वसाधारणकी वस्तु हो जाती है। अर्थात् भावकत्व शक्ति द्वारा विभाव-अनुभाव आदि व्यक्ति संबन्धसे मुक्त होकर जन-साधारणके अनुभव योग्य बन जाते हैं, उनमें कोई विशेषता नहीं रह जाती। इसे और स्पष्ट करनेके लिए कहा जा सकता है कि शकुन्तला दुष्यन्तकी प्रेयसी न रहकर साधारण स्त्रीका स्थान ग्रहण कर लेती है और उसका तिरस्कार तथा विरह स्त्री साधारणका तिरस्कार और विरह हो उठता है। दुष्यन्तकी पीड़ा जिसमें वह घुलता रहता है जन-साधारणकी पीड़ाका स्थान ग्रहण कर लेती है और शकुन्तला तथा दुष्यन्त से सम्बन्धित व्यक्तित्व, देशकाल और अवस्थादिका आवरण हटाकर शकुन्तला और दुष्यन्त हर देश, हर काल तथा हर अवस्थाके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। और इस प्रकार भरतमुनिके वाक्यमें आये 'संयोग' शब्दका अर्थ 'सर्व साधारणसे योग' हो जाता है। और जिस प्रक्रिया द्वारा इस प्रकार साधारणीकृत स्थायी भावका इस रूपमें भोग होता है उसे 'भोजकत्व' कहते हैं। यही भोगकी निष्पत्ति है। यही आनन्द रस है जो ब्रह्मानन्द सहोदर है, स्थायी है। इस प्रकार रसकी स्थिति सामा-

जिक अर्थात् प्रेक्षकके हृदयमें है, न कि वास्तविक नायकमें जिसका कि हम अभिनेता द्वारा अनुकरण देखते हैं।

भट्ट नायकके मतमें 'भावकत्व' और 'भोजकत्व' दो प्रक्रियाओंको माना गया है। जिनके द्वारा भावका साधारणीकरण होता है और वही रसकी स्थिति तक पहुँचता है। अभिनव गुप्ताचार्यका मत है कि इन प्रक्रियाओंकी उद्भावना व्यर्थ है। क्योंकि 'भावकत्व' तो भावोंका अपना गुण है ही, जो उनसे भिन्न नहीं किया जा सकता। और संचारी भावोंसे पुष्ट स्थायी भाव ही आस्वादयुक्त काव्यार्थके अस्तित्वके कारण होते हैं। स्पष्ट है कि वही काव्यार्थ इसका भावक है। इसका भोग क्या है? वह भी आस्वादके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं। रसमें भोगका भाव पहले ही विद्यमान है। रस वह है जिसका भोग हो सके, अतः भोजकत्व पृथक् शक्ति माननेकी कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार भरत मुनिके वाक्यमें आये 'संयोग' का अर्थ 'व्यञ्जित होना' और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'आनन्द रूपमें प्रकाशित होना' सिद्ध होता है।

इसे हम यों समझ सकते हैं कि मनुष्य भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें पड़ कर भिन्न-भिन्न प्रकारके संस्कार अपने भीतर संजोता रहता है। उनका किसी भावविशेषसे सम्बन्ध रहता है। इस प्रकार वासना रूपमें प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें वे संस्कार प्रसुप्तावस्थामें रहते हैं। जब हम अभिनय देखते हैं तब अनुकूल स्थिति पाकर अभिनेय, विभाव, अनुभाव, संचारीके दर्शनसे तत्सम्बन्धी संस्कार जाग्रत होते हैं। और जब वे पूर्णरूपेण प्रकाशमान होते हैं तब प्रेक्षकको आनन्द प्राप्त होता है। यही आनन्द रस है। इसे और स्पष्ट शब्दोंमें हम इस प्रकार कह सकते हैं कि काव्यगत विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा प्रेक्षकके पूर्व संचित संस्कार उत्तेजित होकर उसको इतना तन्मय बना देते हैं कि उसकी चित्तवृत्ति आनन्दमय हो जाती है। यही रसास्वादन है। सहृदय सामाजिक अथवा रसिक वही है जिसके हृदयमें ये संस्कार प्रबल मात्रामें विद्यमान होते हैं और जिनमें

उद्‌बुद्ध होनेकी सामर्थ्य होती है। इस मतके अनुसार रसकी स्थिति सहृदय सामाजिकमें है, न कि नायक आदिमें। और यही 'अभिव्यक्तिवाद' अधिकतर मान्य है।

इतना सब समझ लेने पर एक साहित्यकारका कर्तव्य समझनेमें हमें कोई कठिनाई नहीं रह जाती। साहित्यकारका कर्तव्य हो जाता है कि सहृदय सामाजिकके हृद्‌गत प्रसुप्त भावोंको इस प्रकार उत्तेजित करना कि वे रसास्वादनके योग्य हो जायँ। किन्तु एक साहित्यकारके पास ऐसी कौन-सी सामर्थ्य है जिसके उपयोगसे वह उन्हें उत्तेजित कर सकता है? निश्चय ही वह सामर्थ्य है आत्मानुभूति और उसे प्रकट करनेकी शक्ति।

आत्मानुभूतिका सम्बन्ध है अध्ययनसे। अध्ययनका अर्थ रहेगा दर्शन अथवा श्रवण और स्वाध्याय। अतएव एक साहित्यकारके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि बहुश्रुत और बहुविज्ञ हो। उसने कष्ट देखे हों और उनकी अनुभूति की हो। सुखके दर्शन किये हों किन्तु उस सुखमें छिपी एक विशेष प्रकारकी टीसको भी पहिचाना हो, जो सुखी व्यक्तिको भी कुछ खोया-खोया-सा रखती है। उसने दूर-दूर प्रदेशोंका भ्रमण किया हो अथवा जिस क्षेत्रके बारेमें वह लेखनीका उपयोग करे उसे भलीभाँति देखा और परखा हो। जितना ही अधिक बड़ा उसकी अनुभूतिका चित्रपट होगा वह उतना ही अच्छा साहित्य-निर्माता हो सकेगा।

देखा जाता है कि इस प्रकारके बहुश्रुत और बहुविज्ञ व्यक्ति भी साहित्य-निर्माणके क्षेत्रमें पिछड़ जाते हैं, जिसका कारण है आत्मानुभूतिके प्रकटीकरणकी सामर्थ्यका अभाव। प्रबल आत्मानुभूतिके होते हुए भी जिसके पास उसके प्रकट करनेकी सामर्थ्य नहीं वह इस क्षेत्रमें निश्चितरूपेण असफल रहेगा। अतः इस विलक्षण सामर्थ्यकी सिद्धि भी साहित्यकारके लिए परमावश्यक है।

हमें अपने मनोगत भावोंको व्यक्त करनेके लिए भाषाका सहारा लेना पड़ता है और भाषाका आधार है शब्द अतः शब्दशक्तिके ज्ञान विना

साहित्य-रचना असम्भव है। शब्द-शक्ति ही वह सामर्थ्य है जिसके लिए प्रसिद्ध है कि यही जिह्वा घोड़े पर चढ़ा दे और यही काला मुँह करके देश निकाला दिलवा दे। यहाँ जिह्वा इसी शब्दशक्तिका प्रतिनिधित्व करती है।

शब्द शक्तिसे तात्पर्य है किसी शब्दका प्रभाव कहाँ तक पहुँचता है। और शब्दकी उस सामर्थ्यका अनुभव होता है प्रयोग में। गधा एक पशु विशेष है। किन्तु जब हम किसी व्यक्तिको मूर्ख न कहकर 'गधा' कहते हैं तब उसके वास्तविक अर्थका ज्ञान होता है। निश्चय ही वह व्यक्ति पशु विशेष नहीं, अतः इसका कोई दूसरा ही अर्थ हो सकता है और वह है 'गधेके समान मूर्ख'। किन्तु गधा कहनेके स्थान पर उसे मूर्ख क्यों न कहा गया ? वह इसलिए कि 'गधा' शब्दमें जो बल है वह 'मूर्ख'में नहीं। अतः व्यञ्जित हुआ कि वह व्यक्ति बिलकुल गया बीता मूर्ख है। यह व्यंजना ही साहित्यका प्राण है। जिस साहित्यिक कृतिमें भाव पूर्णरूपेण व्यञ्जित होगा उसीमें रसकी निष्पत्ति प्रबल वेगसे होगी। इससे पता चलता है कि आत्माभिव्यक्तिके लिए शब्द प्रयोगकी सिद्धि अत्यावश्यक है।

यह पहले कहा जा चुका है कि रसकी स्थिति सहृदय प्रेक्षक अथवा श्रोतामें रहती है। अतः शब्द प्रयोगके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह दर्शक अथवा श्रोताके मनोहारी हों। और वह तभी हो सकता है जब कि यथासम्भव सरलतम शब्दों द्वारा भावाभिव्यक्ति हो। एक साहित्यकार जितने सरल और सुबोध वाक्यों द्वारा भावाभिव्यक्ति करनेमें समर्थ होगा वह उतना ही सफल साहित्यकार होगा। यही कारण है कि प्रसादगुणको रचनाके लिए सर्वश्रेष्ठ माना गया है। और जो जितना ही सुलझा हुआ साहित्यकार होगा उसके भाव और भाषामें उतना ही सामञ्जस्य और सारल्य होगा।

इससे सिद्ध है कि कोई भी साहित्यकार न केवल भावके सहारे चिरजीवी हो सकता है, न भाषाके। दोनोंका सामञ्जस्य ही स्थायी रचनाको जन्म देता है। इस प्रकरणमें भाषासे तात्पर्य निरा शब्दप्रयोग नहीं।

अपितु आत्माभिव्यक्तिके साधनसे है। चाहे वह शब्दों द्वारा हो अथवा बिना शब्दोंके। कई स्थानों पर हजार शब्द मिलकर भी वह भाव व्यक्त नहीं कर सकते जो केवल किसी विशेष अंगकी एक भंगिमा मात्रसे व्यक्त हो सकता है। इसीलिए अपनी विशेष भंगिमा मात्र लेकर मंचपर अवतीर्ण होनेवाले मूकपात्र दर्शक पर जो प्रभाव छोड़ जाते हैं वह अधिक बोलने-वाले पात्रोंसे भी शायद सम्भव नहीं। कई नाटकोंमें निर्जीव पदार्थोंका भी वह प्रभाव देखा जाता है जो शायद सजीव पात्रोंसे भी सम्भव न हो। मेरे 'बड़बेरी' एक पात्रीय नाटकमें एक ठूंठ जो प्रभाव छोड़ जाता है। वह दर्शनीय है।

यह बात स्वयंसिद्ध है कि किसी भी साहित्यिक कृतिके लिए कहानी, पात्र, कथोपकथन आदि सब गौण पदार्थ हैं। साहित्यकारका एकमात्र कर्तव्य रह जाता है भावाभिव्यक्ति और भाव पुष्टि। चाहे वह शब्द द्वारा हो अथवा निःशब्द। वातावरण निर्माणसे हो अथवा किसी अन्य प्रकारसे। उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि अपने दर्शकों अथवा श्रोताओं-को देश, काल आदिकी परिधिसे ऊपर उठाकर सर्वदेशीय, सार्वकालिक स्थितिमें ले जाये। केवलमात्र घटना अथवा वातावरणका वर्णन उसका कर्तव्य नहीं। वह किसी राजा-महाराजा अथवा धनिकका वन्दीजन नहीं, और गरीबों और मज़दूरोंका वकील ही है। वह है केवलमात्र और सच्चा भावाभिव्यक्तिकार। उस भावाभिव्यक्तिमें राजा-महाराजा और सेठ-साहूकारकी किसी अंशमें प्रशस्ति भी हो सकती है और गरीब मजदूरोंका क्रन्दन भी। किन्तु वह सब होगा भावाभिव्यक्ति और उसीकी पुष्टिके लिए, और उतनी ही मात्रामें जहाँ तक उससे इसकी सिद्धि होती हो।

कुछ विद्वान् इतिहास, मनोविज्ञान आदिपर बल देते हैं किन्तु इति-हासका सम्बन्ध कालविशेषसे है और मनोविज्ञानका केवलमात्र मानसिक गुत्थियोंको सुलझानेसे। किन्तु जिस स्थितिमें एक साहित्यकार अपने दर्शक अथवा श्रोताको देश-कालकी परिधिसे ऊपर उठा लेता है वहाँ इतिहास

इतिहास नहीं रह जाता। मनोविज्ञानका साहित्यके साथ अविभाज्य संबन्ध होते हुए भी मानसिक गुत्थियोंको सुलझाने मात्रमें अपने उद्देश्य-को साहित्यकार नहीं भुला सकता। उस स्थितिमें उसके लिए मनोविज्ञान पर अलगसे विचाद करना श्रेयस्कर होगा। साहित्यिक रचनामें तो उसका उतना उपयोग ही सफल होगा जिससे भावकी पुष्टिमात्र संभव हो।

लोक-साहित्यकार शायद इसीलिए इतिहास आदिके पचड़ेमें पड़ना पसन्द नहीं करता। वास्तवमें वे राजा-महाराजा अथवा दृश्य सम्भव भी हैं जिनका उसने अपनी कृतिमें वर्णन किया है? वह इस ओर कभी ध्यान नहीं देता। इसीलिए यदि कोई आलोचक लोक-साहित्यकारके इस पक्षको लेकर चीरफाड़ करना आरम्भ करे तो उसे निराश ही होना पड़ेगा। लोक-साहित्यकार तो विशुद्ध साहित्यकार है। उसका लक्ष्य तो केवलमात्र भावा-भिव्यक्ति तथा भाव-पुष्टि है। उसके लिए भले ही उसे असम्भव पात्रों, भूत-प्रेत, जादू-टोनोंसे काम लेना पड़े। वह शाही लकड़हारेका सम्बन्ध आसानीसे जोधपुरके राजकीय घरानेसे जोड़ लेता है। वह माधोपुरके पास चन्दनके इतने घने जंगलोंकी कल्पना कर सकता है कि जहाँसे लगातार वर्षों चन्दनकी लकड़ी काटते रहने पर भी समाप्त न हों। वह अपने पात्रोंको सात समुद्र पार भेज सकता है और वहाँके काल्पनिक चित्रण द्वारा अपने दर्शकको भावविभोर कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह इतिहासकी सर्वत्र अवहेलना करता है। अपितु जहाँतक सम्भव होता है वह उसकी भी विशुद्ध अवतारणा करनेका यत्न करता है, जैसी कि किरणदेवीके सतीत्वकी परीक्षाके अवसर पर। इतिहास-प्रसिद्ध इस घटनामें विलक्षणता है और स्वतः दर्शक अथवा पाठकको भावविभोर करनेकी सामर्थ्य है। अतः लोक-साहित्यकार उसे तोड़ना-मोड़ना अनावश्यक समझता है। उसका लक्ष्य स्पष्ट है, भावाभि-व्यक्ति और भावपुष्टि। उसके लिए भले ही किसी भी अंशको तोड़ना-मरोड़ना अथवा विकृत करना पड़े।

दर्शक अथवा श्रोता उस प्रकारका आलोचक नहीं होता जो बालकी खाल उतारे। वह विशुद्ध ब्रह्मानन्द सहोदर साहित्यिक आनन्दकी प्राप्तिके लिए इस ओर अग्रेसर होता है और यदि वह उसे पूर्ण मात्रामें प्राप्त हुआ तो समझिए कि साहित्यकार सफल है और यदि साहित्यकार केवल रेखा-गणितके जंजालमें पड़ गया तो समझिए कि 'इतो भ्रष्टस्ततो नष्टः' धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका। इसीलिए कविकुल शिरोमणि श्री कालिदास पुराणकी प्रसिद्ध घटनामें शापकी कल्पना कर अपने 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' को इतना ऊँचा उठा सके।

जहाँ तक भावाभिव्यक्तिके साधनका प्रश्न है, लोक-साहित्यकार उसके प्रकटीकरणके लिए शब्द खोजनेको कोष लेकर नहीं बैठता। उसके सामने व्यावहारिक कोष खुला पड़ा है, जिसमें अनन्त शक्ति-सम्पन्न अनन्त शब्द-भण्डार भरा पड़ा है। वह सोलह श्रृङ्गारका वर्णन न करके केवल इतनेसे उसकी अनुभूति करवानेमें समर्थ है।

'हुई झरन-झरन, चली नीर भरन, रलमिलके दो-चार सखी'

पानी भरनेके लिए चलते समय अलङ्कारोंकी झरन-झरनसे लोक-कवि जो बात उत्पन्न कर देता है वह सोलह श्रृङ्गारके वर्णनमें पृष्ठके पृष्ठ रँग देने पर भी सम्भव नहीं।

लोक-नाट्यकार कथानकका कोई बन्धन नहीं मानता। वह उपयुक्त जँचने पर अपना कथानक पुराणसे ले सकता है। इतिहाससे ले सकता है। लोक-कथा और कल्पनासे भी काम चला सकता है। वह काल्पनिक राजा-महाराजाका सम्बन्ध किसी भी राजघरानेसे जोड़ सकता है, क्योंकि उसका लक्ष्य इतिहास कहनामात्र नहीं, अपितु भावाभिव्यक्ति है और यही कारण है कि उसका कथानक इतिहास सिद्ध न होते हुए भी अमर रहता है। उसके लिए देश-विदेशका कोई बन्धन नहीं, इसीलिए 'शीरीं फ़रहाद' जैसे कथानकोंको मंच पर लानेमें किसी प्रकारकी झिझकका अनुभव नहीं करता।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि लोक-साहित्यकार कलाको कलाके लिए मानता है अपितु वह तो समझता है कि कला वह हो ही नहीं सकती जिसका जीवनके सतत प्रवाहसे प्रगाढ़ सम्बन्ध न हो। साहित्य शब्दका अर्थ ही इसकी पुष्टिके लिए पर्याप्त होगा। जिस रचनामें हितकारी भाव निहित हो वह साहित्य है। इसीलिए लोक साहित्यकार भावोंकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है कि उसका जीवनमें हितकारी निदर्शन हो। हरियाणा-का लोकमंचकार सदा इस बातका ध्यान रखता है कि वह भावाभिव्यक्तिके साथ-साथ समयके साथ चले। 'लीलोचमन' और 'मुग़ल पठानकी' जैसे कथानक इसके सबल उदाहरण हैं जिनमें स्वतंत्रता प्राप्तिके बादकी भारत-की दशाका निदर्शन कराया गया है। 'लीलोचमन' में सन् ४७ के दंगोंका वर्णन प्राप्त होता है। और 'मुगल पठानकी' में स्वतंत्रताके पश्चात् होने-वाली चोर बाज़ारी और रिश्वतका। पैसेके लोभमें अधिकारिवर्ग किस प्रकार देशहितकी परवाह किये विना इस ओर लगे हैं इसका रोमांचकारी वर्णन मिलता है किन्तु कुछ कारणोंसे हम उसे इस संग्रहमें स्थान न दे सके हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि हरियाणा लोकमंच लगभग सवा दो सौ वर्षसे सतत लोक-जीवनको अनुप्राणित करता चला आ रहा है। इस बीच इसे अनेक उच्च कोटिके कलाकारोंका सहयोग प्राप्त हुआ है। लगभग सवा दो सौ वर्ष पूर्व जिस ज्योतिको किशनलाल भाटने प्रज्वलित किया, एक सौ सत्तर वर्ष बाद उसीमें पं० दीपचन्दने स्वरूप परिवर्तन किया। आरम्भमें स्वाँगका स्वरूप मुजरे सरीखा था। नायक-नायिका आदि मंच पर खड़े होकर अपना अपना अभिनय करते थे और सारंगी तथा ढोलकवाले उनके पीछे घूम-घूम कर साज़ बजाते थे। बिजली और गैसके अत्यन्ताभावके कारण मशालोंके प्रकाशमें सब खेल होता था, और एक मशालची प्रत्येक अभिनेताके सामने जब कि उसके अभिनयका अवसर होता एक हाथमें मशाल और दूसरेमें तेलकी कुप्पी लिए घूमता रहता। अभिनेता जब भी कोई मार्मिक

वाक्य कहता कि मशालची अपनी मशालमें कुप्पीसे तेल उण्डेल कर अभि-नेताके चेहरेको और प्रकाशित कर देता। एक प्रकारसे यों कहना अधिक उचित होगा कि मशालची मशालची न रह कर एक प्रकारसे एक अभि-नेताका काम करता।

उस समय मंच पर मुख्य वस्तु आनेसे पूर्व धारूड़ा नचाया जाता था। धारूड़ा आजकल नगरोंमें विज्ञापन बाँटनेवाले लोगोंके जनताको इकट्ठा करनेके लिए नचाये जानेवाले बाँस और कागजके बने घोड़ेके समान होता था। तब भी वह जनताको एकत्र करनेके उपयोगमें आता था। उसका नाच आध-पौन घण्टे तक होता और नृत्य आरम्भ होते ही दर्शक अपना-अपना स्थान प्राप्त करनेके लिए एकत्र होना आरम्भ हो जाते। उस समयकी एक उक्ति प्रसिद्ध है। लड़की माँ से आग्रह करती है कि—

'मनै भी जगाइए हे मां! जिब धारूड़ा नाचै'

हे मां! मैं सो रही हूँ इसलिए जब धारूड़ा नाचने लगे तब मुझे भी जगा देना। लोकमंचके प्रति जनताके औत्सुक्यका परिदर्शन इस उक्तिसे संभव है।

पं० दीपचन्द विद्वान् थे, शास्त्रवेत्ता थे। एक दिन मेलेमें श्रीमद्भाग-वतका सप्ताह कर रहे थे। उनके स्थानसे कुछ हटकर एक मण्डलीने अपना मंच स्थापित कर लिया था। पण्डितजीकी कथामें श्रोताओंकी भीड़ लगी थी। श्रोता रस-विभोर थे कि तभी ढोलक पर थाप पड़ी। धारूड़ा नाचने लगा। एक-एककर श्रोता उठने लगे और कुछ ही देरमें भीड़से खचाखच भरा कथास्थान विरलजनप्रायः हो गया। पण्डितजीने कथा बन्दकर दी। वे अपने पुस्तक पन्ने संभालने लगे। बचे-खुचे श्रोताओंने कथा सुननेकी उत्सुकता प्रदर्शित की किन्तु पण्डितजी कथासे विरत हो चुके थे। उन्होंने उस कथाको मन-ही-मन तिलाञ्जलि दे दी थी जो श्रोताओंको

बाँध न सके। वे पुस्तक उठाकर अधूरी कथा छोड़ अपने घर लौट आये और उसी दिनसे नयी मण्डलीकी स्थापनाकी तैयारी आरम्भ कर दी।

अपने समयमें पं० दीपचन्दका नाम दूर-दूर तक प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने कुछ परिवर्तन भी किये जिनमें मुख्य था साजिन्दोंके लिए मंचपर एक स्थान निश्चित करना। जहाँ पहले साजिन्दोंको अभिनेताओंके पीछे-पीछे घूमना पड़ता था, वहाँ अब मंचपर केवल अभिनेता ही खड़े दिखायी पड़ते थे। साजिन्दे बैठे–बैठे धुनें बजाया करते और तबसे अब तक यही प्रथा चली आ रही है।

पं० दीपचन्दके शिष्योंमें हरदेवा, भर्तू (जो अभीतक जीवित हैं) कुतबी डोम और खेमा प्रसिद्ध हुए। हरदेवाके शिष्योंमें बाजेनाई और चितरू अपने समयके सफल और प्रसिद्ध अभिनेता रहे। भर्तूके शिष्योंमें हुकुमचन्दको अच्छी ख्यातिप्राप्त हुई।

इसी प्रकार पं० नत्थूरामके शिष्योंने इस क्षेत्रमें खूब ख्यातिप्राप्त की। अपने समयमें मानसिंह, बुल्ली, दीना लोहार और रामसिंहने अपने गुरुके नामको चार चाँद लगा दिये। जिनमेंसे मानसिंहके शिष्योंमें पं० लखमीचन्द बहुत प्रसिद्ध हुए। रघुबीर और भण्डूके नाम भी स्मरणीय हैं। देशके बटवारेके समय भण्डू पाकिस्तान चला गया।

लखमीचन्दके शिष्योंमें माँगेराम, माईचन्द, सुलतान, चन्दन और रतिरामकी अपनी मण्डलियाँ हैं, जो आज भी गाँव-गाँवमें जनताका मनोरंजन करती हैं।

इसके अतिरिक्त आज जो मण्डलियाँ इस प्रान्तमें प्रसिद्ध हैं उनमें रामकृष्ण व्यास, रामानन्द आज़ाद मास्टर, धनपत, रिसालसिंह, हुकुमचन्द और माईचन्द प्रसिद्ध हैं। दत्तनगरवासी चन्द्रलाल भाट उपनाम बादीका भी नाम स्मरणीय है।

हरियाणा लोकमंचने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं और यह विरोधोंमें भी बराबर पनपता गया है। लगभग अठारह-बीस वर्ष पूर्व हरियाणा

की आर्यसमाजोंने एक प्रस्ताव द्वारा इन मण्डलियोंका बहिष्कार कर दिया था और पूरी शक्तिसे इनका विरोध किया था। आर्यसमाजके सुधारवादी प्रचारकोंके इस प्रस्तावसे लगने लगा था कि यहाँका मंच समाप्त हो जायगा किन्तु भाग्यसे उसी अवसर पर इसे-लखमी चन्द सरीखा अभिनेता और कवि मिला। जिसने हरियाणाको कुछ नयी तर्जें दीं, और मंचको एक नया रूप दिया। इनसे पूर्व चालीस तोलेसे भी ऊपरका झालरा उस व्यक्तिको पहनना पड़ता था जो स्त्रीका अभिनय करता था, और नृत्य करते समय अपनी रबड़की बनी नकली छातियोंको इस प्रकार झटका देना पड़ता था, कि देखनेवाले एक-एक अदापर आह भरकर रह जायें। इन्होंने उस प्रथा-को समाप्त किया और धीरे-धीरे लहंगेके स्थानपर सलवारका चलन आरम्भ किया। आज स्त्री पात्रोंके लहंगा और सलवार दोनों प्रकारके वस्त्रों-को देखा जा सकता है। लखमी चन्दकी डोली (एक प्रसिद्ध तर्ज़) बहुत प्रसिद्ध हुई। एक प्रकारसे डोलीने पं० लखमी चन्दके साथ जन्म लिया और उन्हींके साथ समाप्त हो गई क्योंकि इसे गानेमें गायकको काफी कष्ट उठाना पड़ता है।

राष्ट्रीय मंचकी स्थापना करनेवालोंको लोक मंचका अध्ययन करना चाहिए। वहाँसे उन्हें अनेक अमूल्य रत्न प्राप्त होंगे जिन्हें संवार सिंगार कर लानेपर दिग्दिगन्त व्यापी प्रभावोत्पादक फल सिद्ध होंगे। हरियाणाका लोकमंच जिसे 'ओपन एयर स्टेज' भी कह सकते हैं और जिनका स्वांग ओपेराके समान होता है, निश्चय ही अध्ययनकी वस्तु है। इसकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ प्रस्तुत संग्रहमें संग्रहीत हैं जिन्हें यथावसर आवश्यकता होनेपर सामान्य रूपसे घटाने-बढ़ानेका भी यत्न किया गया है किन्तु बहुत कम। इतना कम कि उसका लोकमंचके कथानकपर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और उसका यथावत् रसास्वादन किया जा सकता है।

जवाहर नगर, दिल्ली]

—राजाराम शास्त्री

हरियाणा लोकमञ्चकी कहानियाँ

●

अञ्जना

राजकुमारी अञ्जना अति सुन्दरी और गुणवती थी। जब वह पिताके घर लाड-प्यारसे पलती, सखियोंमें खेलती विवाहके योग्य हुई तब अञ्जनाके पिताने दूतको बुलाया और आज्ञा दी कि हमारी कन्याके योग्य कोई वर ढूँढ़ो ताकि उसका विवाह किया जाए। आज्ञा पाते ही दूत वरकी खोजमें चल दिया। उसने अपने साथ अञ्जनाका चित्र ले लिया और चलता-फिरता एक दिन उस नगरमें जा पहुँचा जहाँ पवन राजकुमारका पिता राज्य करता था। दूतने पवनके पितासे बात-चीत की और पवनका चित्र अपने साथ लेकर लौट पड़ा। पवनने भी अञ्जनाका चित्र देखा और उसे इच्छा हुई कि किसी प्रकार इस सुन्दरीको एक बार विवाहसे पहले देखना चाहिए। पवन अपने निश्चयके अनुसार मन्त्रीके लड़केको साथ लेकर चल दिया और अञ्जनाके नगरमें पहुँचा। वहाँ वह दो-तीन दिन तक घूमता-फिरता रहा पर महलमें रहनेवाली अञ्जनाके दर्शन न पा सका। एक दिन वह अपने साथीके साथ चला जा रहा था कि कुछ लड़कियोंकी मधुर हँसी उनके कानोंमें पड़ी। पवन ठहर गया। उसे सुनाई पड़ा लड़कियाँ पवनके बारेमें बातचीत कर रही थीं। पवनने उस आवाज़ पर कान लगा दिये। पता चला कि कोई दाऊदपर्व है जिसका चित्र पवनके चित्रसे मिलाया जा रहा है और दाऊदपर्वकी प्रशंसा की जा रही है। पवन अपनी निन्दा सुनकर सटपटाया और उसने निश्चय किया कि वह यह विवाह अवश्य करेगा और इस निन्दाका दण्ड वह अञ्जनाको देगा। पवन वापस अपनी राजधानीको लौट आया।

पवनके कहने पर उसके पिताने अञ्जनाके पिताको पत्र लिखा और सम्बन्ध निश्चित करनेके लिए दबाव दिया। अञ्जनाका पिता मान गया और विवाहका दिन निश्चित हुआ। धूम-धामसे बारात चली और ठाठके

साथ विवाह कर लौटी। किन्तु जब अञ्जनाकी डोली नगरके निकट पहुँची तब पवनने अपना वास्तविकस्वरूप प्रकट किया और घोषणा की कि 'मैं बारह वर्षके लिए अञ्जनाका परित्याग करता हूँ।' अञ्जना यह बात सुनकर सटपटाई किन्तु उसकी बात किसीने न सुनी। उसे नगरके बाहर एक महल दे दिया गया और अञ्जना वहीं वियोगके दिन काटने लगी। राजाज्ञाके अनुसार दहीके मटके महलकी छत पर धर दिये जाते और अञ्जना दिनभर बाँस हाथमें लिये कौओंसे दहीकी रक्षा करती। इसी प्रकार दिन, मास और वर्ष बीतने लगे। इस दशामें यदि कोई उसे धैर्य दिलानेवाला था तो वह अञ्जनाके साथ आई उसकी दासी वसन्तमाला थी।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये। एक बार लङ्कासे पत्र आया जिसमें राजकुमार पवनको युद्धमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण दिया गया था। पत्र मिलने पर राजकुमार अपने पितासे आज्ञा ले लङ्काकी ओर चलनेको तैयार हुआ। उसके साथ वीरोंकी सेना थी। जब वह नगरसे चलकर कुछ दूर पहुँचा तब उसने अपना पड़ाव डाला। रात्रिके समय पवन और मन्त्रीका लड़का बैठे बातचीत कर रहे थे कि उन्हें चकवे और चकवीकी आवाज़ सुनाई दी। पवनने कहा 'देखो मित्र! नदीके इस ओर चकवा और उस ओर चकवी किस प्रकार विरहमें व्याकुल तड़प रहे हैं।' मन्त्री कुमारने अवसर जानकर कहा 'हाँ पवन! बिल्कुल उसी प्रकार जैसे रानी अञ्जना'। अञ्जनाका नाम सहसा कानोंमें पड़ते ही पवनको उसकी स्मृति हो आई। उसने सोचा युद्धमें जा रहा हूँ न जाने वहाँसे जीवित भी लौट पाऊँ या नहीं। जिस दिनसे अञ्जना आई है हमने कभी उसकी सुध न ली। उस बेचारीने बारह वर्ष किस विपत्तिमें काटे होंगे? और वह अञ्जनासे मिलनेके लिए तड़प उठा। उसने मन्त्री कुमारसे कहा 'हम अभी नगरसे बहुत दूर नहीं आये हैं। मैं अञ्जनासे मिल आऊँ तब तक तुम सेनाके साथ यहीं पड़ाव डाले रहना' और पवन अपने घोड़े पर अञ्जनाके महल की ओर लौट पड़ा।

आधी रातके समय पवन अञ्जनाके महलके सामने पहुँचा। दिनभर की थकी-हारी अञ्जना और दासी वसन्तमाला सो गई थीं। पवनने किवाड़ थपथपाये किन्तु बहुत देर तक कोई उत्तर न मिला। तब पवनने और जोरसे किवाड़ खटखटाये। वसन्तमालकी आँख खुली और वह पवनकी आवाज़ सुनते ही पहचान गई। वसन्तमालाने अञ्जनाको जगाया और कहा 'अञ्जना! उठ, तेरा भाग्य लौट आया। आज तेरे द्वार पर राजकुमार पवन पधारा है।' अञ्जना हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई। उसे वसन्तमाला की बात पर सहसा विश्वास न आया। वह समझ न पाई कि वास्तवमें महलके द्वार पर राजकुमार पवन बोल रहा है अथवा वह कोई स्वप्न देख रही है। अञ्जनाने उठकर महलके किवाड़ खोले तो अपने प्रियतमको सामने देख वह गद्गद हो गई। उसने पवनके चरण पकड़ लिये और प्रेम-विह्वल हो आँखोंसे अश्रु बहाने लगी। पवनने अञ्जनाको भुजाओंसे पकड़ कर उठाया। और तब दोनों महलके भीतर लौट आये। राजकुमार पवन रात भर महलमें रहा और प्रातः होते ही चलनेको तैयार हो गया। अञ्जनाने राजकुमारके अपने महलमें आनेकी निशानी माँगी। राजकुमारने अपनी अंगूठी उतार कर अञ्जनाको देते हुए कहा 'यदि मेरे यहाँ आनेकी साक्षी देनेकी आवश्यकता पड़े तो यह अंगूठी दिखा देना' और वह सरपट घोड़ा दौड़ाता अपनी सेनाकी ओर चल दिया। अञ्जना एकटक राजकुमारको जाते देखती रही।

राजकुमारके जाने पर अञ्जना अपने महलमें लौट आई। कष्टके समुद्रमें प्रसन्नताकी एक लहर उठी थी जो एक क्षण बाद फिर उसीमें लीन हो गई। किन्तु वह लहर उस कष्टको और गाढ़ा कर गई। कुछ समय बाद पता चला कि अञ्जनाके सन्तान होनेवाली है। ललिता नामकी दासीने जब यह दशा देखी तो पवनकी माताके जा कर कान भर दिये। 'त्यागी हुई अञ्जनाके सन्तान होनेवाली है' यह बात सुनकर महारानी आग-बगूला हो गई। वह भागी अञ्जनाके महलमें पहुँची और ललिताकी

बातको सत्य देखकर अञ्जना पर बरस पड़ी। महारानीने अञ्जनाको कुलच्छनी, छिनाल और न जाने क्या-क्या उपाधि दी। पवनके पिताको जब पता चला तो आज्ञा दी कि इसे महलसे निकाल बाहर करो। अञ्जना रोई-पीटी, चीखी-चिल्लाई पर किसीने उसकी बात न सुनी और पवनके महलमें आनेकी बात पर किसीने विश्वास न किया। हार कर अञ्जना दासी वसन्तमालाके साथ महलसे निकल कर वनकी ओर चल दी।

चलते-चलते अञ्जनाके पाँवमें छाले पड़ गये। दोनों सहेली थकी हारी सायंकाल एक ऋषिके आश्रममें पहुँचीं। ऋषिने दयाकर इन्हें अपने पास ठहरनेको स्थान दे दिया। धीरे-धीरे फिर समय बीता और तब अञ्जनाने पुत्रका मुख देखा जिसका नाम इन्होंने हनुमान् रखा। पुत्रका लालन-पालन ऋषि पर छोड़कर अञ्जना और वसन्तमाला वहाँसे फिर चल दीं।

राजकुमार पवन युद्धमें विजयी होकर लौटे। राज्य भरमें खुशियाँ मनाई गईं। आमोद-प्रमोद हुए किन्तु जब पवनको अञ्जनाके निकाले जानेका समाचार मिला तब वह मारे कष्टके तड़पने लगा। माँ-बाप वास्तविक बात जानकर बहुत दुःखी हुए और पवन अञ्जनाको खोजनेके लिए घरसे चल दिया। माँ-बापने उसे बहुत समझाया-बुझाया पर वह न माना। मन्त्रीका लड़का उसके साथ था और दोनों गाँव-गाँव, नगर-नगर और एक वनसे दूसरे वनमें धक्के खाते अञ्जनाकी खोज करते घूमने लगे।

दुर्भाग्यसे एक दिन अञ्जनाने अपनी अंगूठी उतार कर रखी कि उसे एक कौआ उठाकर ले उड़ा। बेचारी अञ्जना इस दुःखमें सहारा स्वरूप पवनकी दी हुई अंगूठीको यों जाते देखती रह गई और कुछ न कर सकी। वसन्तमालाने उस कौएका पीछा करनेकी सम्मति दी और दोनों उसी दिशामें चल पड़ीं।

कौआ उड़ता गया उड़ता गया, और उस वृक्ष पर जा बैठा जहाँ पवन और उसका मित्र बैठे थे। कौए की चोंचसे अँगूठी छूटी और

पवनकी गोदमें जा गिरी। पवनने जब अपनी अंगूठी देखी तो तड़प उठा। उसे निश्चय हो गया कि अञ्जना अब इस लोकमें नहीं। उसका शरीर गीध और कौओंकी भेंट चढ़ चुका है। वह उस अंगूठीको लिए रोता रहा और अन्तमें निश्चय किया कि वह इस अंगूठीके साथ अग्निप्रवेश कर जाएगा। मन्त्रीके लड़केने पवनको बहुत रोकना चाहा पर वह अपनी हठ पर दृढ़ रहा। इधर-उधरसे लकड़ियाँ इकट्टी करके उसने चिता जलाई और अग्निमें प्रवेश करनेसे पूर्व एक बार अपने मित्रके गले मिलनेको उसकी ओर बढ़ा। दोनों मित्र एक दूसरेके गले लगे न जाने कितनी देर तक रोते रहे कि तब तक अञ्जना और वसन्तमाला अंगूठीका पीछा करती वहाँ आ पहुँचीं। अञ्जनाने अपने पतिको पहचान लिया और सहसा उसके चरणोंसे लिपट गई। पवनने जब अपनी प्रियाको देखा तो वह रोमाञ्चित हो उठा। उसने अञ्जनाको दोनों हाथोंसे पकड़ कर उठाया। वे परस्पर एक दूसरेको निर्निमेष दृष्टिसे देखते रह गये। दोनोंका संकट समाप्त हुआ और तब पवन अञ्जनाको साथ लेकर अपने नगरकी ओर लौटा और अपने पुत्रको भी ऋषिके पाससे बुलवा लिया। अब ये सब आनन्दसे रहने लगे।

रानी पिङ्गला

एक समय भारतवर्षमें महाराज भरथरी राज्य करते थे। वे अपनी प्रजाको पुत्रके समान मानते थे और प्रजा भी उनका खूब आदर-सत्कार करती थी। उनकी महारानीका नाम पिङ्गला था। पिङ्गला भी पतिव्रता और सुशील स्वभावकी स्त्री थी। महाराज और महारानीका आपसमें खूब प्रेम था।

एक दिन महाराज अपने मन्त्री और कुछ सेनाके साथ शिकार खेलने जानेको तैयार हुए तो महारानीने पूछा 'आप कबतक लौट आएँगे'? महाराजने उत्तर दिया 'यही सप्ताह दस दिन तक।' और महारानी इतने दिनोंके वियोगकी कल्पनाकर मुरझा गई। महाराजने महारानीको समझाया कि 'इस बहाने हम अपनी प्रजाका हाल-चाल जान सकेंगे और शीघ्र ही लौट आएँगे'। महाराज महारानीसे विदा होकर शिकारके लिए चल दिये।

महाराज अपने साथियोंके साथ दूर तक निकल गये। जब ये एक घने जङ्गलसे चले जा रहे थे कि उन्हें एक शिकारी दिखाई पड़ा। वह वृक्षपर बैठे किसी जानवरको अपने तीरका निशाना बनाना चाहता था कि इतनेमें घाससे निकलकर एक सर्पने उसे डस लिया। शिकारीका निशाना चूक गया और मारे विषके व्याकुल होकर कटे वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसकी चीख सुनकर महाराज अपने साथियों सहित वहाँ पहुँचे तो क्या देखते हैं कि शिकारी दम तोड़ रहा है। महाराजने उसे सान्त्वना देनी चाही पर विष बराबर अपना प्रभाव किये जा रहा था और घोर जङ्गलमें उसका कोई उपाय न था। दम तोड़ते हुए शिकारीने

महाराजसे कहा 'मेरा परिवार यहाँसे कुछ दूरीपर रहता है, कृपाकर आप उन्हें इसकी सूचना दे दें' और वह इतना कहते-कहते दम तोड़ गया। महाराजको उसकी मृत्युसे घोर सन्ताप हुआ और अपने एक सैनिकको उसके घर सूचना देने भेज दिया। सैनिकने जैसे ही शिकारीके घर पहुँच कर सूचना दी, उसको पत्नी रोती-बिलखती और विलाप करती वहाँ आ पहुँची। उसके विलापसे जङ्गलके पशु-पक्षी तक स्तम्भित हो गये। वह कुररीके समान विलाप कर रही थी, जिसका साथी किसी शिकारीने शिकार कर लिया हो। उसका रोना सुनकर महाराजके नेत्र सावन-भादोंके समान झर रहे थे। शिकारीकी पत्नीने कुछ देर बाद अपने आँसू पोंछ लिये और वहींसे कुछ लकड़ियाँ इकट्ठी कर चिताकी तैयारी करने लगी। जब चिता तैयार हो गई तब वह अपने पतिका मृतक शरीर लेकर चितामें जा बैठी और चितामें अग्नि लगा ली। महाराजके देखते-देखते शिकारी और उसकी पत्नी दोनों जलकर भस्म हो गये।

महाराजने जब शिकारीकी पत्नीका अपने पतिके साथ इस प्रकारका प्रेम देखा तो उन्हें महारानी पिङ्गलाकी याद आई। उसी समय अपने मन्त्रीको बुलाकर आज्ञा दी कि 'वह राजधानी लौट जाए और महलोंमें पहुँचकर महारानी पिङ्गलासे कहे कि महाराजको शिकार खेलते समय सर्पने डस लिया और वे स्वर्ग सिधारे'। मन्त्रीने महाराजको समझाया 'महाराज! इस प्रकारका परिहास अच्छा नहीं होता'। पर राजहठको कौन टाल सकता था। मन्त्रीको राजधानीमें पहुँचकर महाराजका सन्देश महारानीको सुनाना पड़ा। महारानी सन्देश सुनते ही बेहोश हो गईं। बान्दियोंमें हलचल मच गई। महारानीको होशमें लानेके यत्न किये गये और जब उन्हें होश आया तब वे भी विलाप करने लगीं। महलकी बाँदियाँ भी झर-झर आँसू बहा रही थीं और महारानी पिङ्गला तो होशमें आती विलाप करती और फिर बेहोश हो जाती। मन्त्री मन-ही-मन दुःखी हो रहा था और महाराजके इस झूठपर उन्हें धिक्कार रहा था

पर राजाज्ञाका भेद खोलना उसके बसकी बात न थी और इसीलिए प्रलाप करती महारानीको वह ठूँठ बना देखे जा रहा था।

अन्तमें रो-धोकर जब महारानी पिङ्गला कुछ स्वस्थ हुईं तब उन्होंने मन्त्रीसे पूछा 'महाराजकी लाश कहाँ है?' मन्त्रीने जङ्गलका पता बता दिया। महारानी मन्त्रीके साथ महलसे जंगलकी ओर चल दी। महल से निकलते ही महारानीको अच्छे शकुन दिखाई पड़ने लगे। चौकमें लगी बेल हरी-भरी थी जिसके लिए उनका विश्वास था कि महाराजकी मृत्युके साथ यह अवश्य मुरझा जाएगी। महारानीने इन शकुनोंको देखकर सोचा 'कहीं मन्त्री हमसे धोखा तो नहीं कर रहा है? कहीं महाराजको दूर गया जान मन्त्री हमपर इस बहाने अत्याचार तो नहीं करना चाहता?' और उसने मन्त्रीको डाँटना आरम्भ कर दिया। उसने कहा 'मन्त्री! मैं समझ गई तुम झूठे हो और मुझे धोखा देना चाहते हो! जब तक यह बेल हरी-भरी है तब तक महाराजका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता'। मन्त्रीने हाथ जोड़कर कहा 'महारानीजी! मैंने आयु भर आपका नमक खाया है। मैं आपको धोखा नहीं दे सकता'। पर महारानी अपने महलको लौट आई। महारानीके लौट जानेपर मन्त्रीने सोचा 'जब तक यह बेल हरी-भरी है तब तक महारानी मेरी बातका विश्वास न करेंगी और वैसे ही वापस जंगलको लौट जानेपर महाराज क्रुद्ध होंगे'। इतना सोचकर मन्त्रीने बेल जड़से काट दी।

जब महारानी महलमें लौटकर गईं तब बान्दियोंने फिर पूछा और महारानीने अपना विश्वास उनसे कह सुनाया। बाँदियाँ महारानीकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुईं और बेलको देखने चौकमें पहुँचीं। वहाँ जाकर क्या देखती हैं कि बेल जड़से कटी पड़ी है। वे भागी-भागी महलमें गईं और बेलके कटनेकी चर्चा महारानीके सामने की। जब महारानीने सुना कि बेल तो जड़से कट गई है तब उसे मन्त्रीकी बातपर विश्वास हो गया। पर तब भी उसे दिखाई पड़े शकुनोंके कारण सन्देह रहा और मन्त्रीके

साथ जंगलमें जाना स्वीकार न किया। उसे ख्याल था कि हो सकता है महाराजकी मृत्युके कारण मन्त्री किसी प्रकारका धोखा करे और वह अपने महलपर जा चढ़ी। उसने बाँदियोंको सन्देश दिया कि 'मेरा शरीर महाराजके शवके साथ जलाया जाए' और महलके ऊपरसे छलांग लगा दी।

जब मन्त्रीने महारानीकी आत्महत्याका सन्देश सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। वह राजधानीसे जंगलकी ओर चल दिया जहाँ महाराज अपने साथियोंके साथ ठहरे हुए थे और महारानीकी मृत्युका सन्देश महाराजको जा सुनाया। जब महाराजने महारानीकी आत्महत्याकी पूरी कहानी सुनी तो उन्हें हार्दिक दुःख हुआ। उनकी हठ और परिहासने उनकी प्राण-प्यारीके प्राण हर लिये थे। उन्हें स्वयं से ग्लानि हो गई। वे पागलोंके समान प्रलाप करते जंगलोंमें घूमने लगे। कभी महारानी पिङ्गलाके बारेमें वृक्षोंसे पूछते और कभी जंगली हरिणों से। इस प्रकार रोते-बिलखते एक दिन वे एक जंगलमें जा पहुँचे जहाँ गुरु गोरखनाथ अपने शिष्यों सहित ठहरे हुए थे। महाराजका प्रलाप सुनकर गुरु गोरखनाथ का मन भी पसीज गया और उन्हें अपने पास बुलाकर प्रलापका कारण पूछा। जब महाराजने सब वृत्तान्त सुना दिया तब गुरु गोरखनाथने उन्हें उपदेश दिया 'संसार मरणशील है। जो आया है वह अवश्य जाएगा। जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा'। पर महाराजको दुःख था तो यह कि उसकी हठके कारण महारानीकी मृत्यु हुई और वह उसके अन्तिम बोल भी न सुन सका। गुरु गोरखनाथने उसे फिर समझाया 'इस संसारमें जिसका जिससे जितना सम्बन्ध है उतना भुगतनेके बाद वियोग अवश्यम्भावी है। तब उसके लिए शोक क्यों? और यदि कहो कि अन्तिम समय उससे दो बात भी न कर सका, तो मैं तुम्हारा क्लेश दूर करनेके लिए उसकी आत्माको उसी स्वरूपमें ला उपस्थित करता हूँ'। महाराजने गुरु गोरखनाथकी बात मान ली और गुरुने अपने योग-बलसे

रानी पिङ्गलाकों उसी रूपमें ला खड़ा किया। रानी कुछ समय महाराजके सामने रही और फिर लोप हो गई। महाराज भरथरीने गुरु गोरखनाथके चरण पकड़ लिये और संसारका मोह छोड़कर गोरखनाथके शिष्य हो गये।

सरणदे

पुराने समयकी बात है कि उज्जयन नगरमें राजा भोज राज्य करते थे। वे न्यायशील, प्रजापालक और गुणी पुरुष थे। अपनी प्रजाका सुख-दुःख जाननेके लिए वे प्रायः रातभर वेश बदलकर राज्यमें घूमते और अपनी प्रजाका कष्ट दूर करनेका यत्न करते। एक दिन जब कि वे वेश बदल कर घूम रहे थे तो उनके कानोंमें कुछ लड़कियोंके हँसनेकी आवाज़ पड़ी। वे रुक गये। जब कान लगाकर सुना तो पता चला कि कुछ लड़कियाँ त्र्यंजन कात रही हैं और आपसमें परिहास कर रही हैं। तभी एक लड़कीने कहा 'बहन सरणदे! तू तो राजा भोजकी पटरानी बनने योग्य है'। और उत्तरमें दूसरी लड़कीने कहा 'री, किसका नाम ले रही है। उससे तो मैं पाँव भी न धुलवाऊँ।' इतना सुनना था कि भोजका पारा सातवें आकाश पर जा पहुँचा। उसका हाथ सहसा खड्ग पर जा पहुँचा पर फिर कुछ सोचकर उसने अपना क्रोध पी लिया और उस मकानका द्वार जा थपथपाया। किवाड़ खुले तो उसने देखा कि चार सहेलियाँ त्र्यंजन (सहेलियोंका एक स्थान पर मिलकर कातना) कात रही हैं। पूछने पर पता चला कि उनमें एक ब्राह्मणकी कन्या है। दूसरी क्षत्रियकी, तीसरी कायस्थकी और चौथी नाई की। उनमें पहली तीन विवाहिता हैं और चौथी जिसका नाम सरणदे है क्वाँरी है। उसीसे एक सहेलीने परिहास किया जिसके उत्तरमें राजा भोजसे पाँव धुलवानेकी बात उसने कही है। सरणदेका पिता देवलदे है। यह सब समाचार लेकर राजा चुपचाप लौट आया और दूसरे दिन देवलदेको बुला भेजा।

देवलदे डरता, भय खाता महाराजके सामने पहुँचा। महाराजने उसका आदर-सत्कार किया। बैठनेको आसन दिया और कहा 'देवलदे!

तुम्हारी कन्या विवाह योग्य हो गई है अब उसका विवाह क्यों नहीं कर देते ?' देवलदेने सहजभावसे उत्तर दिया 'महाराज ! कोई उचित वर मिले तो कर दूँ । बहुत खोजने पर भी अब तक कोई ऐसा लड़का नहीं मिल पाया, इसीलिए विवाह नहीं किया ।' महाराजने देवलदेकी बात सुनी । कुछ देर सोचा और फिर कहा 'देवल ! यदि तुम चाहो तो हम उसे अपनी पटरानी बनाना स्वीकार कर सकते हैं ।' महाराजकी बात सुनकर देवलदेको विश्वास न हुआ । उसने कहा 'महाराज ! कहाँ आप और कहाँ सरणदे । कुल मिले न वंश ।' पर महाराजने अपनी बात पर ज़ोर देते हुए कहा 'देवल ! हमने निश्चय किया है कि हम सरणदेसे विवाह करेंगे । जाओ विवाहकी तैयारी करो ।' देवलदे महाराजकी बात सुनकर गिड़गिड़ाया । गरीब प्रजा होनेका वास्ता दिलाया पर महाराज अपने निश्चय से नहीं टले । देवलदे महाराजसे बिदा होकर घर आया । घर पहुँचते ही देवलदे की पत्नीने महाराज द्वारा उसे बुलानेका कारण पूछा और जब उसने सुना कि सरणदे पटरानी होगी तो उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा । उसने अपने पतिको समझाया और सरणदेके भाग्यको सराहा । देवलदे अपनी पत्नीकी बातोंसे सन्तुष्ट हुआ और सरणदेके विवाहकी तैयारीमें जुट गया ।

देवलदेने धूम-धामसे विवाहकी तैयारी की । समय पर बारात आई । संस्कार हुआ और डोली बिदा करवा कर महाराज चल दिये । सरणदे की सहेलियाँ उसके भाग्य पर प्रसन्न थीं पर सहेलीके वियोगकी कल्पनासे आँसू बहा रही थीं । सरणदे की भी वही दशा थी । डोला बिदा होकर राजमहलके द्वार पर पहुँचा । महलोंकी स्त्रियाँ सरणदेकी अगवानीके लिए द्वार पर एकत्र हुईं । गीत गाये जाने लगे । चारों ओर चहल-पहल होने लगी । तभी महाराजने आज्ञा दी कि सब स्त्रियाँ अपने-अपने स्थानको लौट जाएँ । सरणदेको दुहाग दिया गया है इसलिए उसका डोला दुहागी महलमें पहुँचा दिया जाय । इसके सब रंगीन कपड़े उतरवा कर

सफेद वस्त्र दे दिये जाएँ और महलके चारों कोनों पर चार बर्तन दहीके भरवा कर रख दिये जाएँ ताकि यह फटा बाँस हाथमें लिये दिनभर कौओंसे दहीकी रक्षा किया करे। यदि इसके आलस्यसे दहीको कौवे खा जाएँ तो इसे दण्ड दिया जाय।' महाराजकी आज्ञा सुनकर सरणदे केलेके वृक्षके समान काँपी और महाराजके चरणोंमें जा गिरी। सरणदेने अपना दोष पूछा तो महाराजने उस रातकी बात स्मरण करवाई जब उसने कहा था कि 'मैं राजा भोजसे तो पाँव भी न धुलवाऊँ।' सरणदेने अपने हँसीमें कहे वाक्यके लिए क्षमा चाही पर महाराज अपनी बातसे न हिले। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि 'तुम मुझसे पाँव धुलवाओगी तभी पटरानीका पद पाओगी। नहीं तो दुहागमें जीवन बिताना होगा।' सरणदेको दुहागी महलमें पहुँचा दिया गया और दहीकी रक्षा करनेका काम उसे सौंप दिया गया।

दिन बीतते गये। सरणदे अपने दुहागके दिन बिताये जा रही थी। कुछ दिनों बाद देवलदेने पुत्रीका हाल जाननेके लिए अपना एक आदमी भेजा। उसने आकर देखा तो उसके रोंगटे खड़े हो गये। पटरानी बननेके लिए आई सरणदे बैठी काग उड़ा रही थी। उसे बहुत दुःख हुआ। वह सरणदेसे मिला। सरणदेने अपने पिताके लिए सन्देश दिया कि 'यदि वह मेरा कल्याण चाहता है तो मेरे महल तक एक सुरंग बनवा दे। क्योंकि दुहागी महलके चारों ओर पहरा रहता है जिसके कारण वह बाहर नहीं निकल सकती।' देवलदेका आदमी लौट गया और उसने सरणदेकी दशा और उसकी इच्छा देवलदेको जा सुनाई। देवलदे और उसकी पत्नीको पुत्रीकी दशा सुनकर बहुत दुःख हुआ। देवलदेने पुत्रीके कहे अनुसार सुरंग बनवानेका प्रबन्ध कर दिया जो कुछ ही दिनोंमें बनकर तैयार हो गई।

सुरङ्ग बन जाने पर सरणदे उस मार्गसे बाहर निकल आई। उसने जोगनका वेश धरा और बीन लेकर नगरमें पहुँची। जोगनका रूप और बीनकी लहरा सुनकर नगरके लोग मोहित हो गये। जहाँ वह जाती और

बीन बजाती सैकड़ों स्त्री-पुरुष एकत्र हो जाते। धीरे-धीरे जोगनकी चर्चा महाराजके कानों तक पहुँची। महाराजने जोगनकी बीन सुननेके लिए उसे अपने महलमें बुला भेजा। जोगन आई और महाराज उसका रूप देखकर डावाँडोल होने लगे पर अपने हृदयको सम्भाले बैठे रहे। संकेत पाकर जोगनने बीन उठाई और पूरे कौशलके साथ उसे फूँका। लहरा सुनकर महाराज झूमने लगे। जोगनका सौंदर्य और बीनका लहरा। महाराज विषधर सर्पके समान झूमने लगे। जोगनने पाँवमें घुंघरू पहने और नृत्य आरम्भ किया। महाराज विमुग्ध हरिणके समान जोगनकी ओर ताकते रह गये। जोगन नाचते-नाचते सहसा गिर पड़ी और कराहने लगी। महाराज अपने आसनसे दौड़कर आये और जोगनका कष्ट पूछा। जोगनने कराहते हुए कहा 'इस नृत्यसे मेरे पाँवोंमें आग-सी लग गई है। आप मुझे जीवित रखना चाहते हों तो एक लोटा ठण्डा पानी इस पर उण्डेल दें। नहीं तो मैं अब कुछ ही क्षणोंकी मेहमान हूँ।' विमुग्ध महाराजने जोगनकी बात पर विश्वास किया और उसके पाँवोंकी अग्नि शांत करनेके लिए स्वर्णझारीसे शीतल जल ले आये और जोगनके पाँव धोने लगे। महाराजको पाँव धोते देख जोगन मुसकराई। महाराजको उसकी मुसकानमें छल की गंध आई। उन्होंने कड़क कर पूछा 'सच बता क्यों हंसी'! जोगनने कहा 'महाराज! आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। आप ही ने कहा था कि हमसे पाँव धुलवाएगी तभी पटरानीका पद पाएगी। आशा है आप मुझे भूले न होंगे। मैं हूँ आपकी दोहागी रानी सरणदे।' सरणदेका नाम सुनते ही महाराज चौंके पर तीर हाथसे छूट चुका था। सरणदेने महाराजसे अपने पाँव धुलवाये थे इस लिए अपनी प्रतिज्ञानुसार महाराज को उसे पटरानी पद देना पड़ा और सरणदे आनन्दपूर्वक महलोंमें रहने लगी।

पद्मावत

किसी समय संसारमें प्रसिद्ध एक नगर था जिसका नाम था रत्नद्वीप। वहाँ एक समय प्रतापी, न्यायशील और गुणज्ञ महाराज अंगध्वज राज्य करते थे। उनका एक पुत्र था जो रूपमें कामदेवको भी मात देता था और परम चतुर और गुणवान् था। एक दिन राजकुमार रणवीर सिंह अपने कुछ साथियोंको अपने साथ लेकर जंगलमें शिकार खेलने गया। कुछ दूर पहुँचने पर उन्हें सामने एक हरिण दिखलाई पड़ा। राजकुमारने अपना घोड़ा हरिणके पीछे छोड़ा। ये लोग भागते दौड़ते बहुत दूर निकल गये। रणवीर सिंहके साथी बहुत पीछे छूट गये और घोर जंगलमें पहुँच कर हरिण भी कहीं दृष्टिसे ओझल हो गया। रणवीर सिंह इस भाग दौड़में थक चुका था। पसीना आया हुआ था और उसे प्यास लगी थी। वह पानीकी खोजमें जब आगे बढ़ा तो उसे एक अति रमणीक तालाब दिखाई पड़ा। उस तालाबके चारों ओर नाना प्रकारके पुष्प खिले थे। राजकुमारने घोड़ेको एक वृक्षके साथ बाँध दिया और स्वयं नीचे उतर कर मुँह हाथ धोया, पानी पिया और ज़ीन बिछा कर आराम करने बैठ गया।

उसे बैठे अभी थोड़ी ही देर बीती थी कि उसके कानोंमें स्त्रियोंकी मधुर ध्वनि पड़ी। उसने जब इधर-उधर देखा तो देखता ही रह गया। स्त्रियोंका एक झुंड तालाबकी ओर चला आ रहा था जिसमें एक बाला अप्सराओंमें इन्द्राणी सी दिखाई पड़ती थी। स्त्रियाँ हँसती खेलती चुहल करती तालाबके किनारे आईं और स्नान करने लगीं कि तभी उस परम सुन्दरीकी दृष्टि राजकुमार रणवीर सिंह पर पड़ी। राजकुमार को देखते ही बाला अपने तन-मनकी सुध भूलने लगी। सखियोंने जब यह दशा देखी

तो वे उससे हँसी करने लगीं पर उसने सब सखियोंको डांट दिया और वे नहा-धोकर तालाबसे बाहर निकलीं।

जब वे वस्त्र और आभूषण पहनने लगीं तो वह बेचारी अबला जो राजकुमारको देखकर अपना तन-मन भूल चुकी थी पाँवके गहने हाथोंमें और हाथोंके गहने पाँवोंमें पहनने लगी तब सखियाँ हँसीं और उनने मिलकर उसके वस्त्र और आभूषण छीन लिये और वे हँसती-खेलती अपने स्थानको लौटने लगीं। तब उस लड़कीने एक पुष्प तोड़ा और राजकुमारको दिखाकर उसे कानसे लगाया फिर छातीसे और तब उसे पाँव तले मलकर अपनी सहेलियोंके साथ चली गई।

उन स्त्रियोंके चले जानेपर राजकुमार रणवीरसिंह बेहोश होकर गिर पड़ा। जब उसे कुछ होश आया तो ठण्डी आह भरकर उन्हें इधर-उधर खोजने भागने-दौड़ने लगा। इतनेमें उसका एक साथी उसे खोजता उधर आ निकला। जब उसने राजकुमारकी यह दशा देखी तो वह इसका कारण पूछने लगा। राजकुमार रणवीर सिंहने एक ठण्डी आह भरी और अपने मित्र चन्द्रदत्तको धीरे-धीरे सब घटना कह सुनाई। चन्द्रदत्तने कहा 'मित्र! बिना जाने-पहचाने यों पागलोंके समान किसीको चाहने लगना व्यर्थ है। तुम राजधानीको लौट चलो वहाँ चल कर आनन्द से रहो। पर रणवीरसिंहको बिना उस सुन्दरीको देखे कहाँ चैन? वह राजधानी लौटनेको तैयार न हुआ और पागलोंके समान विलाप करने लगा। जब चन्द्रदत्तने देख लिया कि राजकुमार अब मानने वाला नहीं तब उसने उस सुन्दरीका पता ठिकाना पूछा पर राजकुमार यह भी नहीं जानता था। तब चन्द्रदत्तने पूछा 'क्या जाते समय उसने कोई संकेत दिया था?' तो रणवीर सिंहने कहा 'हाँ, मित्र! उसने एक पुष्प लेकर पहले कानसे लगाया फिर छातीसे और तब उसे पाँवतले मल कर चली गई।' इतना सुनते ही चन्द्रदत्त बोला 'अब आपको घबरानेकी आवश्यकता नहीं। मैं समझ गया वह राजकुमारी कौन थी?' राजकुमारने उसका अता-पता

पूछा तो चन्द्रदत्त बोला 'मित्र ! उसने पुष्प अपने कर्णसे छूआ जिसका अर्थ है कि वह करणाटक देशके महाराजकी पुत्री है। उसने पुष्पको हृदयसे लगाया जिसका अर्थ है कि वह आपको हृदयसे चाहती है और तब उसने पुष्पको पाँवतले मल दिया जिसका अर्थ है कि उसका नाम पद्मावत है। यदि आप राजधानी लौटना नहीं चाहते तो करणाटक चलनेको तैयार हो जाएँ'। और वे दोनों अपने-अपने घोड़ों पर सवार जिधर वे स्त्रियाँ गई थीं उधर चल दिए।

चलते चलते वे करणाटक देशकी राजधानीमें पहुँचे और एक सुन्दर सा बाग़ देखकर उसमें ठहर गए। थोड़ी देर बाद उस बाग़की मालिन घूमती-फिरती जब उस ओरसे निकली तो दो पथिकोंको बैठे देख क्रुद्ध हुई। उसने कहा 'तुम्हें मालूम नहीं यह जनाना बाग़ है ? तुम्हें इस बाग़में आने की हिम्मत कैसे हुई ?' किन्तु तभी चन्द्रदत्तने अपनी जेबसे पाँच मुहरें निकाल कर मालिनके हाथ पर धर दीं। मालिन बहुत प्रसन्न हुई। वह समझ गई कि ये कोई राजकुमार हैं और भाग्यके मारे किसी कष्टमें फँस कर इधर आ निकले हैं। उसने उनकी बहुत खातिर की और उन्हें अपने घर ले गई और बाग़में रहनेको एक स्थान दे दिया। ये दोनों मित्र अवसरकी खोजमें मालिनके पास रहने लगे।

उधर पद्मावत जबसे तालाबमें स्नान करके लौटी रात-दिन रणवीर-सिंहको स्मरण करके रोती रहती। सहेलियोंने राजकुमारीको बहुत समझाया-बुझाया पर सब व्यर्थ। न पद्मावती कुछ खाए न पीए। दिन-रात रोती रहे। अन्तमें सहेलियोंने विचार किया 'यदि राजकुमारीको कुछ हो गया तो हम इसके माँ बापको क्या कहेंगी ? इस लिए समय रहते हमें इसकी माँ को सूचित कर देना चाहिए'। और वे पद्मावतकी बीमारीकी सूचना उसकी माँको दे आईं।' माँ अपनी पुत्रीको बीमार सुनते ही अपने महलसे दौड़ी आई। पुत्रीका उतरा मुखमण्डल और कमजोर शरीर देखकर घबराई। उसने उसी समय राजवैद्यको बुला भेजा। राजवैद्यने राजकुमारीकी नाड़ी

देखी तो कोई रोग न था। उसने राजकुमारीका मुख देख कर महारानीसे एकांतमें कहा 'राजकुमारीका मन किसी पुरुषमें अटका है इसलिए इसका विवाह कर देना ही अब उचित है।' महारानी सब बात समझ गई और उसने महाराजसे एकांतमें सब बात कह सुनाई। महाराजने कह दिया कि 'पद्मावत जिस पुरुषको चाहती है उसका पता ठिकाना बता दे। हम विवाह कर देंगे।' महारानी महाराजकी बात सुन कर प्रसन्नतावश दौड़ी-दौड़ी पुत्रीके महलमें गई और बोली 'पुत्री'! तेरे पिता जी उसी पुरुषसे तेरा विवाह करनेको राज़ी हैं जिसे तू चाहती है। यदि तू उसका पता ठिकाना बता दे तो हम तेरा विवाह वहाँ कर दें'। पर पद्मावती स्वयं न जानती थी कि वह पुरुष कौन है? इसलिए वह इस बारेमें अपनी माँको कुछ न बता सकी और उसकी माँ भी चिन्तित-सी उठ कर चली गई।

दिन बीतते गये। पद्मावतकी दशा दिन-प्रति-दिन बिगड़ती गई और महाराज तथा महारानी चिन्तित हो उठे पर उनके पास क्या उपाय था? कोई न जानता था कि वह पुरुष कौन है? और किसी दूसरे पुरुषसे विवाह करवाने को पद्मावत तैयार न होती थी।

एक दिन मालिनने सुन्दर-सुन्दर पुष्प चुने और राजकुमारीके पास पहुँचानेके लिये एक हार गूँथा। जैसे ही वह उसे लेकर चलने को तैयार हुई कि चन्द्रदत्तने पूछा 'मालिन! यह हार किसके लिये लेजा रही है'? मालिन बोली 'महाराज! हमारे महाराज की पुत्री बीमार है। वह किसी पुरुष को चाहती है जिसका, उसे स्वयं पता नहीं। आज उसीके लिये यह हार ले जा रही हूँ'। चन्द्रदत्तने पाँच मुहर मालिनके हाथ पर धरी और बोला 'मालिन! यदि हमारा एक पत्र इस हारके साथ उन्हें दे दो तो तुम्हारी बड़ी कृपा हो'। मालिन इसके लिये तैयार हो गई और तब राजकुमार रणवीरसिंहने राजकुमारीके नाम एक पत्र लिखा जिसमें तालाब की घटना का वर्णन करते हुए अपना यहाँ तक पहुँचने का वर्णन किया गया था।

मालिन पत्र लेकर महलमें पहुँची और हारके साथ वह पत्र भी राजकुमारी को दे दिया। राजकुमारीने जब वह पत्र पढ़ा तो गद्-गद् हो गई। उसने मालिन का बहुत सत्कार किया। उसे बहुत सा इनाम दिया और पत्र का उत्तर मालिनके हाथ भिजवा दिया और मालिनसे कह दिया कि उनके रहने-सहने और खाने-पीनेके प्रबन्धमें किसी प्रकार की कमी न आने पाए। मालिन पत्र और इनाम लेकर खुशी-खुशी बाग़ को लौटी और पत्र राजकुमार को दे दिया।

राजकुमारी पद्मावती पत्र मिलनेके बाद प्रसन्न दिखाई पड़ने लगी। उसने अपनी सहेलियों द्वारा राजकुमार की सूचना अपनी माँ को पहुँचाई और महारानीने महाराजको सूचना दी और इस प्रकार राजकुमार रणवीर सिंह और राजकुमारी पद्मावतीके विवाह की तैयारी होने लगी। शुभ मुहूर्तमें महाराजने दोनों का विवाह कर दिया।

विवाहके बाद राजकुमार रणवीरसिंह पद्मावतके महलमें रहने लगा। पद्मावत अपने पति को एक क्षणके लिये भी आँखोंसे ओझल न होने देना चाहती पर राजकुमार दिनमें एक बार अपने मित्र चन्द्रदत्तसे मिलने बाग़में अवश्य पहुँचता। इससे राजकुमारी को संदेह होने लगा कि क्या कारण है जो पतिदेव रोज़ बाग़में जाते हैं ? और एक दिन उसने पूछ ही लिया। तब राजकुमारने पद्मावतको बताया कि 'उस का एक मित्र चन्द्रदत्त है जो उसके साथ आया है और जिसने उसके साथ सब प्रकारके कष्ट झेले हैं और एक तरह उनके मिलनमें इसी का सबसे अधिक हाथ है। सो वह बाग़में रहता है और मैं रोज़ उसीसे मिलने बाग़में जाता हूँ'। पद्मावती को यह सुन कर दुःख हुआ कि राजकुमार अपने मित्रके लिये मुझे छोड़ कर बागमें जाता है। उसने सोचा किसी प्रकार इस चन्द्रदत्त को रास्तेसे हटाया जाए ताकि राजकुमार फिर कहीं न जाए और दिन रात मेरे ही निकट रहे। यह सोच कर उसने अपने पतिसे कहा, ,महाराज ! आप भी कैसे पुरुष हैं जो स्वयं महलोंमें आनन्द करते हैं और

अपने मित्र को कष्ट सहनेके लिये बागमें छोड़ रखा है। और कुछ नहीं तो किसी दिन उसे खाने पर ही बुलाना चाहिये था ताकि वह भी समझता कि मित्रने मेरा सत्कार किया है'। राजकुमार पत्नी की यह बात सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन उसे खाने पर आनेके लिये कहने स्वयं बाग़में गया।

दूसरे दिन राजकुमारीने सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न बनवाए। किन्तु चन्द्रदत्तके भोजनमें उसने विष मिलवा दिया। जब भोजनका समय हुआ तब चन्द्रदत्त महलमें पहुँचा। राजकुमारीने उसका खूब आदर-सत्कार किया और उसे भोजन खिला कर विदा किया। चन्द्रदत्त भोजन पा कर बाग़में लौट आया किन्तु वहाँ पहुँचते ही उसकी दशा बिगड़ने लगी और वह आराम करने पलंग पर लेट गया।

इधर राजकुमारीने मालिन को एकांतमें बुला कर समझा दिया कि 'मैंने अपने पतिके मित्र को विष दिया है। इस लिये जब उस पर विषका प्रभाव होने लगे और वह बेहोश हो जाए तब तुम आकर राजकुमारसे कह देना कि उसे साँप काट गया। खबरदार जो सही बात का किसी को पता चला'? राजकुमारीने मालिन को इनाम देकर विदा किया और मालिनने थोड़ी देर बाद आकर सूचना दी कि 'चन्द्रदत्त को सर्पने काट लिया है और वह पड़ा तड़प रहा है'। रणवीरसिंह सूचना मिलते ही भागा बाग़में गया और वहाँ चन्द्रदत्त को बेहोश देखकर विलाप करने लगा। चन्द्रदत्त का शरीर विषके कारण नीला पड़ गया था। उसके मुँहसे झाग निकल रहा था और वह ठण्डा पड़ा था। मालिनने राजकुमार को समझाया 'महाराज! जो होना था हो गया अब रोने-धोनेसे क्या होता है? अब इस बेचारे की मिट्टी ठिकाने लगाने का यत्न कीजिये।' राजकुमार रणवीरसिंहने कुछ लोग बुलाए और चन्द्रदत्तका शरीर पीनसमें रखवा कर गंगामें प्रवाहने को भेज दिया और स्वयं रोता-धोता महलमें पलंग पर आ पड़ा। पद्मावत अपने पति का. मन बहलाने की चेष्टा करती पर वह न

खाता न पीता, न हँसता न बोलता, चुप चाप पड़ा रोता रहता और आहें भरता रहता।

इधर जब लोग चन्द्रदत्तको पीनसमें ले कर गंगाजीकी ओर चले और कई मील निकल गए तब ठण्डी-ठण्डी हवा लगनेके कारण चन्द्रदत्तको होश आ गया। उसने लोगोंसे अपने बारेमें पूछा तो उन्होंने बता दिया 'महाराज!' आपको सर्प काट गया था इसी लिये हम लोग आपको गंगाजी की ओर ले जा रहे थे।' इतना सुनते ही चन्द्रदत्त सब समझ गया। उसने अपना गहना उतार कर उन लोगोंको दिया और कहा कि 'वापस लौटकर मेरे जीवित होने की चर्चा किसीसे न करना।' और वे लोग चन्द्रदत्तको वहीं छोड़कर लौट पड़े।

चन्द्रदत्त समझ गया कि पद्मावतीने उसे विष दिया है और उसे यह जानकर दुःख हुआ कि जिस पद्मावतको उसके पतिसे मैंने मिलाया उसीने मुझे विष दिया। उसे सन्देह हुआ कि किसी दिन वह मेरे मित्रके भी इसी प्रकार प्राण न ले ले। और वह साधुका वेश बनाकर करणाटककी राजधानी में लौट आया और पद्मावतीके महलके समीप ही धूनी लगाकर बैठ गया।

पद्मावतीने राजकुमार रणवीरसिंहका मन बहलानेका लाख यत्न किया पर वह बात न आ सकी। पद्मावती अपने पतिसे निराश हो गई। एक दिन वह घूमने-फिरने और सैर करने जब महलसे बाहर निकली तो उसकी दृष्टि एक सौदागरके लड़के पर गई और वह उस पर मोहित हो गई। उसी दिन रात्रिके समय राजकुमारके सो जानेपर पद्मावती अपने महलसे निकली और सौदागरके लड़केसे जा मिली और उस दिनसे वह प्रतिदिन रातके समय राजकुमारके सो जानेपर वहाँ जाने लगी।

इधर राजकुमार दिन रात चिन्तित रहता। अन्तमें उसे घरकी याद सताने लगी और उसने महाराजसे विदा मांगी। महाराज और महारानीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें विदा करनेकी स्वीकृति दे दी। जब पद्मावतको पता चला तो वह बहुत दुःखी हुई। उसे सौदागरके लड़केका वियोग सताने

लगा। उस दिन रातको वह शृंगार कर फिर सौदागरके लड़केसे मिलने चली किन्तु चन्द्रदत्तने उसे जाते देख लिया और वह भी दबे पाँव पीछे हो लिया।

पद्मावत सौदागरके डेरेमें पहुँची। बड़ी देर तक सौदागरके लड़केके साथ रही और जब लौटने लगी तो उसने उसे बताया कि कल मेरा पति मुझे ले जायेगा। इतना सुनकर सौदागरके लड़केको बहुत क्रोध आया। उसने कहा 'हमने तुम्हारे कारण अपने साथियों और मालकी चिन्ता न की अब तू हमें यों छोड़कर जा रही है'? और उसने पद्मावतके केश मूँड दिये और उसे कुरूप करके छोड़ दिया। पद्मावती चुप चाप वहाँ से चल दी पर चन्द्रदत्तसे यह सब न देखा गया और उसने अपनी तलवारसे सौदागरके लड़केका सिर धड़से अलग कर दिया। और चुपकेसे आकर अपनी धूनीपर बैठ गया।

पद्मावती छिपती-छिपाती अपने महलमें पहुँची और पहुँचते ही शोर मचा दिया 'दौड़ना-दौड़ना मेरे पतिने मेरे बाल मूँड़ दिये, दौड़ना' और चारों ओरसे लोग दौड़-दौड़कर महलमें पहुँचने लगे और पद्मावती की ऐसी दशा देखकर महाराजको सूचित किया और राजकुमार रणवीरसिंहको पकड़ लिया। राजकुमार बेचारा सोच भी न सका कि आखिर यह सब मामला क्या है?

दूसरे दिन महाराजने सिंहासनपर बैठते ही राजकुमारको उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। दरबार तमाशाइयोंसे खचाखच भरा था और सब राजकुमारको बुरा-भला कह रहे थे कि राजकुमारको दरबारमें उपस्थित किया गया। महाराजने देखते ही जल्लादोंको आज्ञा दी कि 'एक निर्दोष स्त्रीको कुरूप बनानेवालेको शूलीपर चढ़ा दिया जाए'। किन्तु तभी भीड़में से साधु-वेशधारी चन्द्रदत्त सामने आया और बोला 'महाराज! राजकुमार रणवीरसिंह निर्दोष है। आपकी पुत्रीको कुरूप इस राजकुमारने नहीं किया है'। महाराजने राजकुमारकी निर्दोषताका प्रमाण माँगा तो चन्द्रदत्तने कहा 'महाराज! मैं राजकुमारका मित्र चन्द्रदत्त हूँ जिसे तेरी पुत्रीने विष

दे दिया था और 'साँपने काटा' बताया था और तेरी पुत्रीकी मित्रता एक सौदागरके लड़केके साथ थी उसीने रात इसके केश काट डाले और इसे कुरूप कर दिया। यदि आपको विश्वास न हो तो अमुक स्थानपर जाकर देखें कि सौदागरके लड़केकी लाश और इसके केश पड़े हैं या नहीं। आपकी पुत्रीकी ऐसी दशा देखकर मैंने उसे अपनी तलवारसे कतल कर दिया था'।

महाराज जब उस स्थानपर पहुँचे तो उन्हें वहाँ लाश और केश पड़े दिखाई पड़े। उन्हें पता चल गया कि राजकुमार रणवीरसिंह निर्दोष है और राजकुमारीका ही दोष है। महाराजने राजकुमारको मुक्त कर दिया और आदरके साथ विदा किया और अपनी पुत्रीको दण्ड दिया। राज-कुमार अपने मित्रको दोबारा जीवित पाकर अतिप्रसन्न हुआ और वे दोनों अपने-अपने घोड़ेपर सवार होकर अपनी राजधानीको लौट आए।

रामानन्द मोहना देवी

कन्नौजके एक पण्डित थे जिनका नाम था रामदत्त। और रत्नपुरमें एक पण्डित रहते थे जिनका नाम था उमादत्त। दोनों परस्पर मित्र थे। एक बार जब वे मिले तो बातों-बातोंमें पता चला कि दोनोंके घर सन्तान होनेवाली हैं। तब निश्चय हुआ कि यदि एकके लड़की और दूसरेके लड़का हो तो हम दोनोंका विवाह कर देंगे ताकि हमारी मित्रता स्थायी हो जाए। भाग्यकी बात कि रामदत्तके लड़की हुई और उमादत्तके घर लड़का। लड़कीका नाम मोहना देवी रखा गया और लड़केका रामानन्द।

समय बीतता गया। धीरे-धीरे दोनों बालक कुछ बड़े हुए तब बालकपनमें ही दोनोंका विवाह कर दिया। विवाहके बाद रामानन्द पढ़नेके लिए काशी चला गया और बारह वर्ष तक वहीं पढ़ता रहा। अपनी शिक्षा समाप्त करनेके बाद रामानन्दने अपने गुरुसे घर जानेकी आज्ञा माँगी और आशीर्वाद लेकर घरकी ओर चल दिया।

पुराने समयकी बात है। पुरानी कथा है। रामानन्द चलता-चलता कन्नौज पहुँचा और भाग्यसे अपनी सुसराल पं० रामदत्तके घर जा ठहरा। न तो रामानन्दको ही यह स्मरण था कि यह उसकी ससुराल है और न ससुरालवालोंने ही उसे पहचाना क्योंकि उन्होंने उसे बचपनमें ही देखा था और अब वह जवान हो गया था और विद्वान् भी था। पं० रामदत्तने उसकी अच्छी खातिर की और उसे अतिथि समझकर अपने घर ठहराया।

भाग्यकी बात कि मोहना देवी अपनी सहेलियोंके साथ पानी भरने जब कूएँपर गई तब उधरसे धौलपुरके महाराज कर्णसिंह अपने घोड़ेपर

निकले । उनके साथ कुछ सेना थी और वे कन्नौजके महाराज जयचन्दसे भेंट करने जा रहे थे । राजा कर्णसिंहको प्यास लगी थी इसलिये वे सीधे कूएँपर आ पहुँचे और पीनेको पानी माँगा । मोहना देवीने उन्हें पानी पिलाया किन्तु राजा कर्णसिंह पानी पीना भूल मोहना देवीकी ओर देखते रह गए । जब मोहनी देवीने यह दशा देखी तो वह झेंपी । राजाने मोहना देवीसे उसका परिचय पूछा और मोहना देवीने अपने पिताका नाम धाम और स्वयं विवाहिता होनेका वर्णन किया किन्तु राजा कर्णसिंह उसके रूपपर मोहित हो चुके थे इसलिए उन्होंने मोहना देवीको साथ चलनेके लिए कहा । मोहना देवीने उसे डाँट दिया और राजा कर्णसिंह बल खाता वहाँसे चल दिया ।

मोहना देवी अपनी सहेलियोंके साथ घर लौट आई किन्तु उसे क्या पता था कि वह कितनी बड़ी आफत साथ ले कर लौटी है ? राजा कर्णसिंह जब महाराज जयचन्दके पास पहुँचे, उनसे भेंट हुई, कुशलसमाचार पूछा तब कर्णसिंहने ठण्डी साँस ले कर कहा कि 'कुशल कहाँ ?' जयचन्दके पूछने पर कर्णसिंहने मोहना देवीका सारा हाल कह सुनाया । जयचन्दने पहले तो राजा कर्णसिंहको समझाया-बुझाया पर जब उसे किसी प्रकार भी शान्त होते न देखा तब नौकरोंको आज्ञा दी कि 'पं० रामदत्तकी लड़की मोहना देवीको उपस्थित किया जाए । यदि इसमें कुछ हील हुज्जत हो तो उसे सख्त सज़ा दी जाए' । नौकर दौड़े हुए पं० रामदत्तके घर पर पहुँचे और महाराज जयचन्दकी आज्ञा कह सुनाई । आज्ञा सुनते ही पण्डितजीके घर पर शोक छा गया । उन्हें कुछ न सूझ रहा था कि अब वे क्या करें क्या न करें । किन्तु जब मोहना देवीने यह सब चर्चा सुनी तब वह नौकरोंके साथ चलनेको तैयार हो गई । उसने अपने माँ बापको दिलासा दिलाया और एक डोली मँगवा कर उसमें बैठ राजमहल की ओर चल दी । रामानन्द घरमें बैठा यह सब हाल देख रहा था । उसे लड़कीका यों राजमहलमें जाना अच्छा न लगा । मोहना देवीके चले जाने पर रामानन्दने पण्डित रामदत्तको बहुत

बुरा भला कहा और ऐसे दुष्टके घर पानी तक ग्रहण करना पाप समझ कर वहाँसे चल दिया।

मोहना देवीको आई जान राजा कर्णसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। वह उसकी प्रतीक्षामें बैठा शराबकी बोतलपर बोतल चढ़ाए जा रहा था कि डोला उसके महलके सामने जा ठहरा। मोहनादेवी डोलेसे उतरी और एक नौकरके पीछे चलती हुई वहाँ पहुँची जहाँ कर्णसिंह प्रसन्नतामें भरा फूला न समाता था। कर्णसिंहने मोहना देवीका स्वागत किया। नौकर उसे छोड़ वापस लौट गया। कर्णसिंहने मोहना देवीको भुजासे पकड़कर अपने पास बिठाना चाहा कि तड़ाकसे कर्णसिंहकी गाल पर एक थप्पड़ पड़ा। कर्णसिंह जो! नशेके कारण पहले ही लड़खड़ा रहा था चक्कर काटकर गिर पड़ा। कर्णसिंह संभलकर उठना चाहा किन्तु तब तक मोहना देवी उसकी छाती पर सवार हो चुकी थी। मोहना देवीके हाथमें नंगी कटार थी और कर्णसिंह आँखें फाड़े देख रहा था। मारे भयके उसका बुरा हाल था। कर्णसिंहने फिर भी उठना चाहा किन्तु मोहना देवीने कड़क कर कहा, 'खबरदार कायर! यदि रंचमात्र भी हिला-डुला तो यह कटार छातीमें बैठ जाएगी।' भयभीत कर्णसिंहने दोनों हाथ जोड़ लिये और घिघियाते हुए कहा, 'मोहना! तू मेरी धर्मकी बहन है। तू मेरी जान बख्श दे।' मोहना देवीने फिर कड़क कर कहा 'नीच! यदि फिर तू अपनी बातसे टला तब?' कर्णसिंह इतना डर गया था कि उसने मोहना देवीसे अपनी करतूतके लिये क्षमा मांगी और उसे अपनी धर्म बहन माना। मोहना देवीने कर्णसिंहको छोड़ दिया और वह उलटे पाँव अपने घर लौट आई।

रामानन्द जब अपने घर पहुँचा तब माँ बाप उसे देख कर बहुत प्रसन्न हुए और वे बहूको लानेकी तैयारी करने लगे और एक दिन कुछ साथियोंके साथ रामानन्द अपनी सुसरालको चल दिया। किन्तु जब वह उसी घरमें पहुँचा तब उसका माथा ठनका। रामानन्दने यह समझ कर कि लड़की वेश्यावृत्ति करती है उस घरका अन्न जल ग्रहण नहीं किया और

उसी दिन मोहना देवीको छोड़ कर अपने घर लौट आया। जब मोहना देवीको पति द्वारा उसे छोड़नेका कारण मालूम हुआ तब वह बहुत दुःखी हुई। उसके माँ बापने रामानन्दको बहुत समझाया बुझाया किन्तु रामानन्द न माना और अपने घर लौट आया। मोहना देवीको इस घटनासे बहुत बड़ा आघात पहुँचा पर वह घबराई नहीं। उसने राजा कर्णसिंहको धौलपुर चिट्ठी लिख कर भेजी जिसमें धर्म के भाई बहनके सम्बन्धका वर्णन करते हुए अपने साथ बीती दुर्घटना लिखी और उसे तुरन्त एक बार आनेके लिये लिखा। जब दूत चिट्ठी लेकर धौलपुर पहुँचा तब चिट्ठी पढ़कर कर्णसिंहको बहुत दुःख हुआ और वह अपनी सेनाकी टुकड़ीके साथ कन्नौजको चल दिया।

बहन भाई इतने दिनोंके बाद फिर मिले। कर्णसिंहने कहा 'बहन! यदि तू कहे तो उस ब्राह्मणको अभी बन्दी बनाकर मँगवा दूँ और तू कहे तो उस गाँवको आग लगा दूँ'। पर मोहना देवी इनमेंसे किसी बातके लिए तैयार न हुई। उसने कहा 'भाई! इन सब बातोंसे उसे दण्ड दिया जा सकता है उसका प्यार नहीं पाया जा सकता। इसलिए यदि तू मेरा कष्ट दूर करना चाहता है तो कुछ दिनोंके लिए अपनी यह सेना मुझे दे दे।' कर्णसिंह इस बातको मान गया और मोहना देवी पठानका वेश बनाकर सेनाके साथ रत्नपुरकी ओर चल दी।

जब ये लोग चलते-चलते रत्नपुर पहुँचे तब मोहना देवीने अपनी सेनाका पड़ाव वहाँ डाल दिया। नौकर-चाकर सेनाके प्रबन्धमें लगे। मोहना देवीने रत्नपुरके बड़े-बड़े आदमियोंको बुलाया और उनका सम्मान किया। कुछ देर बात चीत करनेके बाद मोहना देवीने कहा 'आपके नगरमें कोई विद्वान् मौलवी या पण्डित हो तो उसे बुलवा दें बड़ी मेहरबानी होगी'। तब सब लोगोंने मिलकर रामानन्दका नाम लिया और उसकी विद्वत्ताकी प्रशंसा की। रामानन्दको बुलानेके लिये नौकर भेजा गया जो थोड़ी देर में उसे साथ ले कर आ पहुँचा। मोहना देवीने पं० रामानन्दका खूब स्वागत सत्कार किया

और अपनी यात्राकी सफलताके बारेमें पूछा। रामानन्दने कुण्डली बनाकर प्रश्न देखा और मोहना देवीको कोई पठान समझकर उत्तर दिया कि 'आपकी यात्रा सफल होगी।' मोहना देवी यह सुनकर प्रसन्न हुई। उसने पण्डितजी की प्रशंसा की और पाँच सौ रुपया उन्हें भेंट किया। जब पं० रामानन्द चलने लगे तब मोहना देवीने कहा 'पण्डितजी! भोजन करके जाना'। पण्डितजी पठानकी यह बात सुनकर सटपटाये और भोजन पानेमें अपनी विवशता प्रकट की। किन्तु खाँ साहब कब माननेवाले थे? उन्होंने रत्नपुरके सब लोगोंको विदाकर दिया और तब पण्डितजीसे विनय की। 'महाराज! मैं जहाँ भी जाता हूँ वहाँ के मुल्ला मौलवी और पण्डितोंको अपने हाथों भोजन करवाता हूँ। आप मेरी श्रद्धा तोड़ेंगे तो नतीजा अच्छा न होगा'। पर जब पं० रामानन्द इस पर भी भोजन करनेको तैयार न हुए तब खां साहब उन्हें एक अलग तम्बूमें ले गए। और कहा 'पण्डितजी! आपके और मेरे बीच खुदा है जो हम किसीसे इसका ज़िक्र करें पर आप मेरी श्रद्धा न तोड़ें। हम और आप आजसे दोस्त हुए'। पर जब खां साहबने किसी प्रकार भी पण्डितजीको राजी होते न देखा तब वे तलवार निकाल कर खड़े हो गए और कहा 'अब तक हम दोस्ती और श्रद्धाका वास्ता दे रहे थे पर अब तुम्हें तलवारके जोर पर हमारे हाथों भोजन करना होगा।' मारके आगे भूत नाचते हैं। रामानन्दने देखा 'बुरे फंसे। पठानका क्या जाएगा यदि यह मुझे यहीं मारकर गाड़ गया'! रामानन्दने हाथ जोड़कर कहा 'खां साहब! मैं आपके हाथसे भोजन कर लूँगा पर मुझे विश्वास दिलाएँ कि इसका किसीको कानों-कान पता न चलेगा? यदि लोगोंको पता चल गया तो मैं कहीं का न रहूँगा'। मोहना देवीने जब रामानन्दको सीधे रास्तेपर आते देखा तो अपनी तलवार मियानमें रख ली और बोली 'पण्डितजी! हम आप आजसे दोस्त रहे। यह लीजिये निशानीके तौर पर हमारी अंगूठी और आप इस काग़ज पर अपना नाम ठिकाना लिख दीजिये ताकि हमें याद रहे। हम किसीसे आपके बारेमें बात न करेंगे।' तब मोहना देवीने पण्डित-

जीके साथ अपनी अंगूठी बदल ली और उनका पता लिखवाकर अपनी जेबमें धर लिया और तब दोनों मित्रोंने एक साथ बैठकर खाना खाया। मोहना देवीने प्रसन्न हो कर पण्डितजीको खूब धन दिया और रामानन्द विदा होकर अपने घर लौट आया।

मोहना देवी भी रत्नपुरसे अपने घर लौट आई। उसने अपने यहाँ की पंचायत साथ ली और तब अपने पतिसे मिलने चल दी। जब पंचायत रत्नपुर पहुँची तब वहाँ की पंचायत भी इकट्ठी हुई। रामानन्द मोहना देवी को देखते ही भड़क उठा। उसे कलंकिनी और वेश्या बताने लगा पर मोहनाने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया 'महाराज! बिना निश्चय किये किसी पर दोष नहीं धर देना चाहिये। केवल अनुमानसे कोई बात सत्य नहीं मानी जा सकती'। पर रामानन्द कब मानने वाला था। जब मोहनाने इस तरह सीधी अंगुलियों घी निकलते न देखा तब वह बोली 'आप यह बताइये कि कुछ दिन पहले यहाँ एक पठान आकर ठहरा था तब आपके साथ क्या बीती थी'? रामानन्दने कहा 'बीतना क्या था? उसने प्रश्न पूछा हमने बता दिया'। मोहना बोली 'सत्य कहिये कि आपने उसके साथ भोजन किया कि नहीं'? रामानन्द इतना सुनते ही आपेसे बाहर हो गया और एक दम बोला 'नहीं, नहीं, नहीं'। मोहना देवीने तब रामानन्दके हाथ का लिखा पता जेबसे निकाल कर दिया और कहा तब 'आप कहिये कि उसे यह पता लिखकर किसने दिया'? रामानन्द अपने हस्ताक्षर देखकर घबराया। तभी मोहनाने पण्डितजी की अँगूठी निकालकर पंचायतमें धर दी और कहा' अब कहिये कि आपने भोजन किया कि नहीं'? रामानन्द मारे लज्जाके भूमिमें गड़ सा गया और वह कातर दृष्टिसे मोहना की ओर देखते हुए गिड़गिड़ाया। तभी मोहनाने कहा 'पतिदेव! बहुत सी बातें सत्य होते हुए भी छुपाई जाती हैं' और बहुत सी बातें असत्य होते हुए भी सत्य मान ली जाती हैं। जैसे आपने अपनी बात छुपानेका यत्न किया और कर्णसिंह उस दिनसे मेरा धर्म भाई होते हुए भी आपने हमारे सम्बन्धों पर

दोष धरा। सो आप शोक छोड़िये और अपनी जिद्द भी। तब न आपपर कोई अँगुली उठा सकेगा न मुझपर। क्योंकि उसी दिनसे कर्णसिंह मेरा धर्म भाई है और वह पठान मैं स्वयं थी'। मोहनादेवी की इतनी बात सुनकर रामानन्द उस की ओर आँखें फाड़े देखता रह गया। मोहनादेवी मुसकरा रही थी। तब पं० रामानन्दने अपना दोष माना और भरी पंचायतमें मोहनादेवीसे क्षमा माँगी और तब वह अपनी पत्नी को साथ लेकर अपने घर गया और दोनों आरामसे रहने लगे।

चन्द्र किरण

मानपुरमें एक राजा राज्य करते थे जिनका नाम था वीरसेन। महाराज वीरसेनका पुत्र मदनसेन सुन्दर, युवा और मनचला था। एक दिन एक सौदागर अपना माल असबाब बेचने मानपुरमें आया और राजदरबारमें पहुँचकर महाराज को अपना माल दिखाने लगा। राजकुमार मदनसेन भी वहाँ उपस्थित था। सामान देखते देखते मदनसेन की दृष्टि एक चित्रपर गई जो किसी सुन्दरी की थी और वह उसे देखता रह गया। एकान्त मिलनेपर मदनसेनने सौदागरसे पूछा 'यह चित्र किसका है' ? तो सौदागरने बताया कि 'कंचनपुरमें महाराज इन्द्रसेन राज्य करते हैं यह चित्र उन्हीं की लड़की चन्द्रकिरणका है जिस के समान आज संसारमें दूसरी कोई सुन्दरी नहीं है।'

मदनसेन सौदागर की बात सुनकर मन ही मन चन्द्रकिरणसे मिलनेका निश्चय करने लगा। उसने सौदागरको आदर-सत्कारके साथ विदा किया और स्वयं राजसी वस्त्राभूषण उतार, साधुका वेश बनाकर कंचनपुरकी ओर चलनेको तैयार हो गया।

जब मदनसेनके पिता वीरसेनको पुत्रके साधु होनेका पता चला तो वह भागा-भागा पुत्रके पास आया और साधु होनेका कारण पूछा। मदनसेनने साफ-साफ कह दिया कि 'मैं कंचनपुरके महाराज इन्द्रसेनकी पुत्री चन्द्रकि-रणसे विवाह करके लौटूँगा।' पिताने पुत्रको बहुत समझाया पर जब वह न माना तब पिताने हृदय पर पत्थर रखकर पुत्रको विदा किया। जब मदनसेन पितासे विदा होकर चला तो उसकी माँ सूचना मिलते ही पुत्रको समझाने दौड़ी आई पर मदनसेन अपने निश्चयसे न टला। माता भी हार पच कर रोती-धोती महलकी ओर लौट चली किन्तु तभी मदनसेनकी स्त्री आ पहुँची

और अपने पतिका पल्ला पकड़कर रो-रो कर साधु बननेका कारण पूछने लगी। मदनसेनका निश्चय अटल था। उसने अपनी स्त्री को चन्द्रकिरणका सब हाल कह सुनाया और चलनेका निश्चय प्रकट दिया। रानी अपने पतिकी बातें सुनकर बेहोश होकर गिर पड़ी पर मदनसेन उसे बेहोश छोड़कर चल दिया। जब रानीको होश आया तब वह पतिवियोगमें विलाप करने लगी। उसकी दासीने रानीको समझाया बुझाया और दिलासा दिलानेका यत्न किया और वह रानीको उठाकर महलमें ले गई।

मदनसेन घूमता फिरता दर-दरकी खाक छानता कंचनपुर पहुँचा और चन्द्रकिरणके महलके पिछवाड़े जाकर अपना डेरा जमा दिया। वह रात दिन वहीं धूनी रमाए बैठा रहता। एक दिन चन्द्रकिरणने अचानक खिड़कीकी ओर से जैसे ही पिछवाड़ेकी ओर देखा वह राजकुमार मदनसेनको देखकर जो अब साधु वेशमें था देखती रह गई। मदनसेनने भी चन्द्रकिरणको पहली बार देखा और उसे जैसा सुना था वैसा ही पाया।

चन्द्रकिरणको जब ध्यान आया तब उसने साधुसे उसका परिचय पूछा और मदनसेनने कह दिया कि 'मैं मानपुरके महाराज वीरसेनका पुत्र मदनसेन हूँ और तुम्हारे सौंदर्यकी प्रशंसा सुनकर तुम्हें देखने साधु बनकर आया हूँ।' चन्द्रकिरणने जब मदनसेनकी बात सुनी तो बहुत दुःखी हुई। उसने कहा 'राजकुमार! शायद तुम्हें पता नहीं कि मुझे चाहने वाले कितने भी राजकुमार आज तक इस नगरीमें आ चुके हैं पर मेरे पिता अभी मेरा विवाह करनेको तैयार नहीं। इसलिये जो भी आता है मेरे पिता उसे कैद कर लेते हैं। तुम्हारा भाग्य अच्छा हो तो तुम उलटे पाँव लौट जाओ। नहीं तो पिताको पता चलते ही तुम्हें कैद करवा लेंगे और तब पछताए कुछ न बनेगा।' पर मदनसेन कब टलने वाला था? उसने चन्द्रकिरणसे कह दिया 'चाहे तेरे पिता कैद छोड़ हमें जल्लादोंको सौंप दें पर हम अपने आप यहाँसे टलने वाले नहीं हैं।' और चन्द्रकिरण समझ गई कि राजकुमार प्रणका पक्का है इस लिये उसने खिड़कीके

रास्ते कमन्द लटका दी और उसे उसके सहारे ऊपर चढ़ आनेको कहा। मदनसेन कमन्द पकड़ कर ऊपर चढ़गया और अब यह उनका रोज़का काम हो गया। झुटपुटा होते ही चन्द्रकिरण कमन्द नीचे लटका देती और मदनसेन उस कमन्दके सहारे महलमें पहुँच जाता और सवेरे मुँह अंधेरे वह उसी रास्तेसे नीचे उतर आता और दिनभर धूनी पर बैठा रहता।

एकदिन सवेरे जिस समय मदनसेन महलसे नीचे उतर रहा था, शहर कोतवाल आ पहुँचा। जब कोतवालने मदनसेनको देखा वह समझा कि कोई चोर महलमें चोरी करना चाहता है और उसे पकड़ लिया। मदन सेनने कोतवालकी बहुत मिन्नत समाजतकी पर वह उसे बाँधकर ले गया और उसे महाराजके सामने खड़ा कर दिया। महाराज कोतवालकी बात सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और आज्ञा दी कि इसे कैदमें डाल दिया जाए।

जब अगले दिन मदनसेन समय पर महलमें नहीं पहुँचा तो चन्द्रकिरणको बड़ी चिन्ता हुई। उसने अपनी दासीको बुलाकर सब बात कह सुनाई और मदनसेनकी खोज करनेकी आज्ञा दी। दासी महलसे खोज करने चली तो पूछते-पूछते पता चला कि वह साधु जो राजकुमारीके महल के पिछवाड़े बहुत दिनोंसे धूनी रमाए बैठा था रात महलमें चोरी करते पकड़ा गया और महाराजने उसे कैद कर दिया। दासीने महलमें पहुँच कर राजकुमारीको सब बात कह सुनाई जिसे सुनकर चन्द्रकिरण तड़प उठी, पर उसे मदनसेनको छुड़वानेका कोई उपाय न सूझ रहा था।

इधर मदनसेन महाराज इन्द्रसेनकी कैदमें था और उधर उसकी पहली रानी अपने पतिके वियोगमें तड़प रही थी। जबसे मदनसेन उसे छोड़ कर आया था उस बेचारीको अपने पतिकी कोई सूचना न मिली थी। एक दिन वह महलमें रोते-रोते सोई थी कि उसे स्वप्न दिखाई दिया जैसे कोई बालक उससे कह रहा हो 'रानी! तू यहाँ महलमें आराम कर रही है और तेरे पति कंचनपुरके महाराज इन्द्रसेनके यहाँ कैद काट रहे हैं।' रानीकी

आँख खुली तो वह तड़प उठी। उसकी मारे भय और दुःखके चीख निकल गई। रानीकी आवाज़ सुनकर दासी भागी आई और रोनेका कारण पूछा। रानीने अपना स्वप्न दासीको सुनाया और वह जोगन बनकर अपने पति को खोज लानेकी तैयारी करने लगी। दासीने रानीको बहुत समझाया 'यह काम कोई आसान नहीं। आप कहाँ-कहाँ ठोकरें खाती घूमेंगी?' पर रानी ने एक न मानी। उसने जोगनका भेंस धरा। एक बीन हाथमें ली और कुछ खर्च साथ लेकर महलसे चल दी।

वह चलते-चलते कंचनपुर पहुँची और अपने पतिके बारेमें पता लगाने लगी। धीरे-धीरे उसे पता चला कि उसके पतिको महाराजने कैदकर लिया है। तब रानीने पता चलाया कि महाराजको किस चीज़का शौक है? वह यह जानकर बहुत प्रसन्न हुई कि महाराज नृत्य और गीतको बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि उसे स्वयं ये दोनों काम बहुत अच्छे आते थे। अब वह दिन-दिन भर नगरके किसी स्थान पर बैठकर गाती-बजाती और राहचलते लोग ठहर जाते। कुछ ही दिनोंमें उसके गानेकी चर्चा नगरभरमें होने लगी। होते-होते यह बात महाराज इन्द्रसेनके कानोंमें पहुँची और उन्हें भी जोगनका गाना सुननेका शौक हुआ। महाराजने अपने चोबदारको आज्ञा दी कि जोगनसे हमारी ओरसे प्रार्थना करो कि हम उसका गाना सुनना चाहते हैं। चोबदार महाराजके पाससे चलकर जोगनके पास आया और महाराजकी प्रार्थना कह सुनाई। जोगनने सुनकर उत्तर दिया 'चोबदार! महाराजसे कहना हम जोगियोंका राजाओंसे कोई सम्बन्ध नहीं। हम तो हरिकीर्तन करते हैं और हमारा स्थान राजमहलोंमें नहीं जंगल बयाबानोंमें है जहाँ हम एकान्तमें बैठ कर हरिकीर्तन कर सकें और ध्यान मग्न हो सकें।' चोबदारने जोगनकी बात सुनकर विनती की 'जोगी और संत महात्माको चाहिए कि जहाँ वह स्वयं प्रभुका गुण-कीर्तन करता है वहाँ सांसारिक लोगोंको भी उसे सुना कर उनका उपकार करे।' सो हमारे महाराज आपका भजन सुनना चाहते हैं आपको इनकार नहीं करना चाहिए।'

जोगन चोवदारकी बात सुन कर उसके साथ चलनेको तैयार हो गई और अपनी वीन साथ लेकर महाराज इन्द्रसेनके सामने जा पहुँची।

महाराज जोगनको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और जोगनने अपना संगीत सुनाना आरम्भ किया। रानी संगीतमें प्रवीण थी ही। उसके संगीत पर जानकारोंके सिर हिलने लगे और दरबारी और महाराज झूमने लगे। बहुत देर तक जोगनका गाना होता रहा और अन्तमें महाराजने निवेदन किया 'जोगन! हम तुम्हारे संगीतसे बहुत प्रसन्न हुए। तुम जो चाहो माँग सकती हो'। जोगन बोली—'महाराज! हम जोगी विना वचन लिए कुछ नहीं माँगते, इस लिए यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो पहले वचन दीजिए'। महाराजने जो उसके गीतसे बहुत प्रसन्न था जोगनको मुँहमाँगा इनाम देनेका वचन दिया। तब जोगनने अपने आनेकी सारी कथा महाराजको कह सुनाई और उसने बताया कि मैं मानपुरके राजकुमारकी रानी हूँ जो आपकी लड़कीसे विवाह करनेकी इच्छासे मुझे छोड़कर यहाँ चला आया और आपने उसे कैद कर लिया। सो यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मेरे पतिको छोड़ दीजिए और अपनी पुत्री चन्द्रकिरणका विवाह मेरे पतिसे कर दीजिए'।

महाराज जोगनका परिचय जानकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय मदनसेनको कैदसे ले आनेकी आज्ञा दी। राजकुमार मदनसेनका महाराज इन्द्रसेनने आदर-सत्कार किया और अपनी पुत्रीका विवाह उसके साथ कर दिया। चन्द्रकिरण भी अपने इच्छित पतिको पाकर बहुत प्रसन्न हुई। ये लोग कुछ दिनों कंचनपुरमें आरामसे रहे और तब महाराज इन्द्रसेनसे आज्ञा लेकर अपने राज्यकी ओर लौटे। मदनसेन और उसकी दोनों रानियाँ बहुत प्रसन्न थीं। महाराज इन्द्रसेनने अपनी पुत्रीको विदा करते समय बहुत-सा धन और हाथी घोड़े दिए जिन्हें लेकर ये सब अपने राज्य को लौट आए।

राजबाला अजीतसिंह

एक समयकी बात है कि अमरकोटमें राजा अनारसिंह राज्य करते थे। उनके राजकुमारका नाम अजीतसिंह था। बचपनमें राजा अनारसिंहने अपने पुत्रका सम्बन्ध जैसलमेरके राजा प्रतापसिंहकी पुत्री राजबालासे कर दिया किन्तु भाग्यका चक्कर कि एक बार शत्रुने चढ़ाईकी और राजा अनारसिंह युद्ध क्षेत्रमें काम आए। शत्रुकी सेनाने अमरकोटमें प्रवेश किया। उस समय अनारसिंहकी रानी अपने पुत्रको साथ लेकर भाग खड़ी हुई और एक किसानके यहाँ जाकर शरण ली। माँ बेटा उस किसानके यहाँ परिश्रम करते और बदलेमें रोटी कपड़ा पाते। इसी प्रकार कुछ समय बीत गया और उन्हीं दिनों रानीका भी देहान्त हो गया।

अजीतसिंह किसानके यहाँ काम करता रहा और धीरे-धीरे यौवनकी दहलीज पर पाँव रखा। एक दिन किसी बात पर किसान अजीतसिंहसे नाराज़ हो गया और उसने क्रोधमें भरकर अजीतसिंह पर व्यंग्य किया 'ऐसा राजपूत बना फिरता है तो अपनी मंगेतर राजबालासे विवह क्यों नहीं कर लेता'? किसानका व्यंग्य अजीतसिंहसे नहीं सहा गया। क्षत्रियका हृदय जल उठा और उसने निश्चय किया कि जैसे भी हो वह राजबालासे विवाह करेगा।

अजीतसिंहने उसी समय एक दूतको जैसलमेर भेजनेका निश्चय किया और उसे एक पत्र दिया जिसमें राजबालाके साथ अपनी हुई सगाईका वर्णन करते हुए राजा प्रतापसिंहसे प्रार्थनाकी गई थी कि 'वे अपनी बात पर दृढ़ रहें और मेरी दशाका विचार न करते हुए विवाह कर दें। समय तो आता है और चला जाता है पर बात रह जाती है। इस लिए आप अपने और मेरे पिताके सम्बन्धका ध्यान रखते हुए इस कामको पूरा कर दें।' दूत अजीतसिंहका पत्र लेकर जैसलमेरकी ओर चल दिया।

दूत चलते-चलते जैसलमेर पहुँचा और राजा प्रताप सिंहसे उसने भेंट की। अजीत सिंहका पत्र उन्हें दिया जिसे देखकर राजा प्रताप सिंह सोचमें पड़ गए। वे सहसा यह सोच न पाए कि वे क्या उत्तर दें। उन्होंने दूतको आरामसे ठहराया और तब वे महलमें रानीसे विचार-विमर्श करने चले गए।

राजबालाको दूतके आनेकी सूचना मिली तो उसने दूतको अपने पास बुलाकर सब वृत्तान्त सुना। राजबालाने दूतकी पूरी बात सुनकर कहा 'आप अजीत सिंहसे मेरी ओरसे निवेदन कर दें कि राजबाला यदि विवाह करेगी तो उन्हींसे अन्यथा वह अब दूसरे किसी पुरुषको स्वीकार न करेगी। चाहे मेरे पिता कुछ भी उत्तर दें किन्तु अजीत सिंहसे कहना मेरा और उनका सम्बन्ध अटूट है। आर्य स्त्री पति एक ही बार वरती है बार-बार नहीं'। दूत राजबालाके ये वचन सुनकर सन्तुष्ट हुआ और महलसे चलकर अपने स्थान पर आया।

राजा प्रताप सिंह अपनी रानीके साथ बहुत देर तक विचार-विमर्श करते रहे। बहुत ऊँच-नीच सोचा और अन्तमें दूतको बुलाकर सन्देश दिया कि 'हम अपने सम्बन्धको भूले नहीं हैं, विवाह अवश्य होगा किन्तु एक शर्त है कि अजीत सिंहको बीस हजार रुपया हमें देना होगा। यदि वह तैयार हो तो हम विवाहके लिए हर समय तैयार हैं।' दूत समझ गया कि यह इनकार करनेका अच्छा उपाय है। जिसके पास अपने खाने-पीनेका भी सामान नहीं। जो दूसरोंके सहारे पेट पाल रहा है उससे बीस हज़ारकी मांग करना इनकार नहीं तो और क्या है? और दूत वहाँसे विदा हो कर अजीतसिंहके पास लौट आया।

अजीसिंहने दूतके मुखसे बात सुनी तो स्तम्भित रह गया। वह सोचमें पड़ गया। भला बीस हज़ार वह कहाँसे लाए? अन्तमें सोच-विचार कर उसने निश्चय किया कि वह अपने पिताके मित्र अमर कोटके सेठके पास जाएगा और उसे इस संकटमें सहायताकी प्रार्थना करेगा। अजीतसिंह अमरकोटकी ओर चल दिया और सेठके सामने जा पहुँचा।

सेठ अजीतसिंहकी सब परिस्थिति सुन कर कुछ देर सोचता रहा और तब बोला 'राजकुमार ! मेरी तुम्हारे पिताके साथ मित्रता रही है इस लिए मैं रुपया देनेसे इनकार नहीं करता पर मुझे कैसे विश्वास हो कि मेरा रुपया लौट आएगा ?' अजीतसिंह इस बातका क्या उत्तर देता ? किन्तु सेठ ने फिर कहा—'राजकुमार ! मैं इस संकटके समय आपकी हृदयसे सहायता करना चाहता हूँ क्योंकि नहीं तो मेरे मित्रकी बात जाती है किन्तु उसके लिए तुम्हें एक प्रण करना होगा।' अजीतसिंह प्रणकी बात सुनकर सेठकी ओर मुँह खोले देखता रहा। 'वह कौन-सा प्रण है जो मुझे करना होगा ?' वह कुछ न सोच पाया। अन्तमें उसने पूछ ही लिया 'कौन-सा प्रण सेठ जी !' तब सेठने कहा 'यही कि जब तक तुम मेरा बीस हजार रूपए लौटा न दोगे तबतक राजबाला को अपनी कन्याके समान समझोगे'। सेठकी बात सुनकर अजीतसिंहको संसार घूमता दिखाई पड़ा। वह असमंजसमें पड़ गया। सेठने फिर समझाया 'राजकुमार ! मैं तुम्हारे एक बोल पर बीस हजार देनेको तैयार हूँ तो इसलिए कि मेरे मित्रकी बात न जाने पाए। और तुम्हें यदि प्रतिज्ञा करनी है तो इस लिये कि तुम्हारे पिताकी बात न जाने पाए। क्षत्रिय हो तो प्रतिज्ञा करो, अभी बीस हज़ार दे दूँगा और धूम-धामसे विवाह भी रचा दूँगा।' अजीतसिंहने सेठकी बात मान ली और तब जैसलमेर पत्र लिखकर विवाहका दिन निश्चित कर लिया। समय पर अजीतसिंह अपने इष्ट-मित्रों सहित जैसलमेर पहुँचा और बीस हज़ार रुपया दे कर राजबालाको विवाह लाया। राजा प्रतापसिंहकी इच्छा अधूरी रही और अपनी बीस हज़ारकी माँग पर लज्जित भी हुआ पर अब क्या हो सकता था ? चुप हो गया और दहेजमें दो घोड़े और कुछ सामान दे कर लड़कीको अजीतसिंहके साथ विदा किया।

राजबाला अजीतसिंहको पा कर संतुष्ट थी। वे एक छोटेसे मकानमें रहते। रूखा-सूखा जैसा मिल जाता खा लेते। राजबालाने कभी पिताके ऐश्वर्यकी चर्चा न की। उसे ख्याल था कि कहीं उससे पतिको चोट न

पहुँचे। कहीं वे यह न समझ लें कि मैं इस स्थितिसे असंतुष्ट हूँ किन्तु उसे एक बात अखरी कि जब वे रातके समय सोते तब दोनोंके बीचमें नंगी तलवार रहती। राजबाला नंगी तलवारके बारेमें सोचती रही पर इसी प्रकार आठ दस दिन बीत जने पर भी जब वह इसका अर्थ न समझ पाई तब एक दिन वह अजीतसिंहसे पूछ बैठी 'आज मुझे यहाँ आए दस दिन बीत गए। मैं देखती हूँ कि वैरी यह खड्ग हम दोनोंके बीच सदा रहता है। इसका क्या कारण है? यदि मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो आप मुझे क्षमा करें।' अजीतसिंह राजबालाकी बात सुन कर बोला 'देवि! तुम्हें मालूम है कि बीस हज़ार रुपया देकर मैं तुम्हें विवाह कर लाया हूँ। तुम ही सोचो कि इस दशामें मेरे पास वह बीस हज़ार कहाँसे आया? वह बीस हज़ार मैं अपने पिताके मित्र एक सेठसे उधार लाया था और रुपया देते समय उसने प्रतिज्ञा करवायी थी कि जब तक मैं उसका बीस हज़ार लौटा न दूँ, तुम्हें कन्याके समान समझूँ।' अजीतसिंह की बात सुनकर राजबालाको बहुत खेद हुआ किन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी। राजबालाने मधुर शब्दोंमें कहा 'प्रियतम! आपने अच्छा किया कि जैसे भी बना आप मुझे विवाह लाए किन्तु वह रुपया इस प्रकार तो जीवन भर न लौटाया जा सकेगा। उसका हमें कुछ उपाय करना चाहिये।' किन्तु अजीतसिंहके पास कौन-सा उपाय था जिससे वह बीस हज़ार जुटा पाता। दोनोंने मिलकर अनेक विधि सोचीं और अन्तमें निश्चय हुआ कि राजबाला भी पुरुषवेशमें अजीतसिंह का साथ दे और दोनों किसी राजाके पास जाकर नौकर हो जाएँ और अवसर देखकर वीरता आदिसे बीस हज़ार पानेका यत्न करें। राजबालाने अपना नाम गुलाबसिंह रखा और अजीतसिंहका साला बनकर एक घोड़े पर सवार हो साथ चल दी। ये दोनों चलते-चलते उदयपुर पहुँचे जहाँ महाराज जगतसिंह राज्य करते थे। ये दोनों दरबारमें उपस्थित हुए और प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गए। महाराज जगतसिंहने इनका परिचय और आनेका कारण पूछा। तब अजीतसिंहने कहा 'महाराज! हम क्षत्रिय

कुमार हैं और घरसे कामकी खोजमें चले आए हैं। मेरा नाम अजीतसिंह और इनका नाम गुलाबसिंह है। हम दोनों साला बहनोई हैं।' अजीतसिंह की बात सुनकर महाराज जगतसिंहने दोनों क्षत्रिय कुमारोंको एक बार फिर देखा जो यौवनसे भरपूर और सजीले युवक थे और दोनोंको अपनी विशेष सेनामें भर्ती कर लिया।

अजीतसिंह और राजबाला उदयपुरमें रहने लगे। कुछ दिन बाद दशहरेका त्योहार आया। बड़ी धूम-धामसे राज्य भरमें त्योहार मनाया गया। महाराज जगतसिंहने उस दिन शस्त्रपूजन किया और सायंकाल अपनी विशेष सेनाकी टुकड़ीके साथ वे शिकारको चल दिये। जब वे वनमें पहुँचे तो सिंहका एक जोड़ा दिखायी पड़ा। महाराजने उन्हें अपना निशाना बनाया पर निशाना चूक गया और सिंहने महाराज पर आक्रमण कर दिया। सिंहकी दहाड़ सुनकर सैनिक इधर-उधर होने लगे। जब तक महाराज संभले तब तक सिंह उनके सिर पर आ पहुँचा और सम्भव था कि वह एक ही झपटमें महाराजका काम तमाम कर देता कि एक तीर सिंहको आकर लगा और सिंह पलटकर नीचे जा गिरा। जब तक सिंह सँभले तब तक किसीकी तलवार उसकी छातीको चीरती पार हो गई। महाराज भयके कारण यह भी न देख पाए कि वह कौन युवक था जिसने उनके प्राण बचाए। इधर सिंहको मार डाला गया और उधर सिंहनीको भी आक्रमण करनेसे पूर्व ही समाप्त कर दिया गया।

दोनों सिंहोंको मरा जान सैनिक फिर इकट्ठे हो गए। महाराजकी तबीयत सँभली और तब वे अपनी राजधानीको लौट पड़े। राजदरबारमें पहुँच कर उन्होंने उन युवकोंको देखना चाहा जिन्होंने उनके प्राण बचाए। सभासद परस्पर एक दूसरेका मुँह ताकने लगे किन्तु तभी अजीतसिंहने सिंह और सिंहनीके कान और पूँछ महाराजको भेंट किये और बताया कि सिंहको उसने स्वयं मारा और सिंहनीको गुलाबसिंहने। महाराज सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और आज्ञा दी कि 'आजसे अजीतसिंह चौबीसों घण्टे

हमारे साथ रहेंगे और गुलाबसिंह हमारे महलके रक्षक होंगे।' महाराजने दोनोंको कुछ पुरस्कार भी दिया।

दिन, मास और वर्ष बीते। दोनों अपने वचन पर अटल महाराज जगत सिंहकी चाकरीमें लगे रहे। अजीत सिंह हर समय महाराजके साथ रहता और राजबाला महलके बाहर पहरा देती। एक दिन अजीतसिंह महाराजको छोड़ने महल तक गया जहाँ राजबाला पहरा दे रही थी कि तभी वर्षा आरम्भ हो गई। अजीतसिंह वहीं महलके द्वारपर एक ओर ओट देखकर वर्षासे बचनेके लिए खड़ा हो गया। राजबालाने वर्षाकी ऋतु और अपने प्रियतमको निकट देखा तो विकल हो उठी। राजबालाने चकवे-चकवीके विरहकी बात कुछ दूरी पर खड़े अजीतसिंहसे कही। अजीतसिंह राजबालाका व्यंग्य समझ गया और उसने धर्म और प्रण की रक्षाको सर्वोपरि बताया। इसी प्रकार बहुत देर तक दोनोंकी सांकेतिक भाषामें बात-चीत चलती रही जिसे महलमें बैठी महारानी बड़े ध्यानसे सुन रही थीं। उनकी बात-चीत सुनकर रानीने महाराजसे पूछा 'महाराज! आप जानते हैं ये दोनों युवक कौन हैं?' महाराजने कहा 'नहीं, क्यों?' ये मेरे हितैषी और वीर हैं।' महारानी बोली 'पर इनकी बात-चीतसे पता चलता है कि इनमें से एक पुरुष है दूसरा स्त्री'। महाराजको महारानीकी बातपर विश्वास न आया। तब महारानीने कहा 'महाराज! चाहे आप इन्हें बुला-कर पूछ लें। मैं समझती हूँ इन पर कोई विपत्ति आ पड़ी है और ये समय काटनेके लिए हमारे पास आ पहुँचे हैं'। महाराजने निश्चय करनेके लिए द्वारसे दोनोंको बुला भेजा और पूछा 'सच-सच बताओ तुम दोनों कौन हो?' इतनी बात सुनकर अजीतसिंहके नेत्रोंमें पानी भर आया और तब, बोला 'महाराज! मैं अमरकोटके राजा अनारसिंहका पुत्र हूँ और ये जैसलमेरके राजा प्रतापसिंहकी पुत्री राजबाला हैं। मेरे पिताको शत्रुने मार कर हमारा राज्य छीन लिया था किन्तु हम दोनोंका सम्बन्ध पहले निश्चित हो चुका था। जब मैंने इसके पिताके पास विवाहके लिए पत्र

भेजा तो उन्होंने बीस हजार रुपयेकी माँग की जो मैं अपने पिताके मित्र एक सेठसे उधार लाया किन्तु उस सेठने मुझसे प्रण करवाया कि जब तक मैं उसका रुपया न लौटा दूँ तब तक राजबालाको कन्याके समान समझूँ और महाराज ! इसीलिए हम आपकी शरणमें आकर अपने दिन काट रहे हैं'। महाराज जगतसिंहने अजीतसिंहकी बात बड़े ध्यानसे सुनी। उनकी धर्मनिष्ठा और वीरतासे वे बहुत प्रभावित हुए। उसी समय आज्ञा दी कि 'सेठका रुपया हमारे कोषसे चुकाया जाए।' महाराजने प्रसन्न होकर अजीतसिंहको एक जागीर पुरस्कारमें दी। अजीतसिंह राजबालाको साथ लेकर उस जागीरमें चले गए और वहाँ दोनों सुखपूर्वक अपने गृहस्थ-धर्मका पालन करने लगे।

वन देवी

पुराने समयकी बात है कि मीरगढ़में महाराज धूमसेन राज्य करते थे। उनके दो रानियाँ थीं। बड़ीका नाम ज्ञानवती और छोटीका शैलवती। राजाके कोई सन्तान न थी और किसी ज्योतिषीने छोटी रानीको बताया था कि गौ की सेवा किया कर तुझे सन्तानकी प्राप्ति होगी। सो ज्योतिषीका कहना मानकर वह नित्य सवेरे-शाम गोशालामें जाती। उनका थान साफ करती। उन्हें अपने हाथों घास चराती और देर तक गौओंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके बाद अपने महलमें लौटकर आती। जब बड़ी रानीको पता चला तो वह भीतर-ही-भीतर शैलवतीसे कुढ़ने लगी। उसे ख्याल हुआ कि 'यदि शैलवतीके पुत्र हुआ तो वही राज्यका अधिकारी होगा। इससे उसका सम्मान घट जाएगा और महाराज छोटी रानीसे अधिक प्यार करने लगेंगे।' यह सोचकर रानी ज्ञानवती मन-ही-मन जलती और छोटी रानीको महलसे निकलवानेका निश्चय करती।

प्रभुकी कृपासे शैलवतीको गर्भ रहा और कुछ ही समय बाद ज्ञानवती भी गर्भवती हुई पर बड़ी रानीको यह जानकर दुःख होता था कि शैलवतीके सन्तान पहले होगी। और यदि वह लड़का हुआ तो उसका मान घट जायेगा। इसलिए एक दिन अवसर पाकर ज्ञानवतीने महाराज धूमसेनसे कहा 'महाराज! छोटी रानीने कुलको लाज लगा दी। वह आधी-आधी रात तक महलसे बाहर रहती है। भला उसका इतनी देर बाहर रहनेका क्या काम?' धूमसेन इतना सुनते ही आपेसे बाहर हो गया। उसने ज्ञानवतीसे कहा 'यदि तू उसे मौके पर पकड़ा दे तो मैं कभी अहसान न भूलूँगा।' शैलवती तो नित्य ही गोशाला जाती थी इसलिए ज्ञानवतीने इस बातको स्वीकार कर लिया।

उसी दिन शामके समय जब रानी शैलवती गोशालामें गईं तभी रानी ज्ञानवतीने महाराजको बुला भेजा। और समझा दिया कि 'आज शैलवतीके महलके द्वार पर प्रतीक्षा करके देख लें कि वह कब लौटती है।' महाराज द्वारपर प्रतीक्षामें बैठ गए।

धीरे-धीरे रात आधी बीती। शैलवतीने गौओंको चारा आदि खिलाया। थान साफ किया। उन्हें आरामसे सुलाया और उनके सो जाने पर अपने महलकी ओर लौटी। जब वह द्वार पर पहुँची तो महाराज धूमसेनने उसका रास्ता रोक लिया। रानी शैलवतीने रास्ता रोकनेका कारण पूछा तो महाराज ने इतनी देर बाहर रहने पर क्रोध दिखाया। शैलवतीने हँसकर कहा 'महाराज! मैं नित्य गौओंकी सेवा करने गोशाला जाती हूँ और अब वहीं से लौटकर आ रही हूँ।' पर महाराजको ज्ञानवतीने सन्देहमें डाल रखा था इसलिए शैलवतीके बहुत कहने पर भी उसे उसकी बात पर विश्वास न आया और आज्ञा दी कि 'इसी समय महल छोड़कर जिधर सींग समाएँ चली जाए।' शैलवतीको महाराजकी नासमझी पर बहुत दुःख हुआ और उसने बहुत सफाई देनी चाही पर महाराजने एक पर कान न धरा। अन्तमें शैलवतीने अपने गर्भका वास्ता दिया पर महाराजको पसीजना था, न पसीजे। रानी शैलवती रोती-धोती वनकी ओर चल दी। उस समय उसे चारों ओर अन्धकार दिखाई दे रहा था। न कोई स्थान, न सहारा। ज्ञानवती सौतके चले जानेसे प्रसन्न हुई।

शैलवती चलती-चलती घोर जंगलमें जा पहुँची। वह आत्महत्या करना चाहती थी पर होनेवाले बच्चेकी आशा उसे आत्महत्यासे रोकती थी। वनमें घूमते-फिरते उसे एक साधुकी कुटिया दिखाई दी और वह सीधी वहाँ जा पहुँची। कुटीमें पहुँचकर उसने साधुको प्रणाम किया। जब साधुने सुन्दरीको घोर वनमें देखा तो पूछा 'बेटी! तू कौन है और यहाँ कैसे आना हुआ'? शैलवतीने रोते-रोते अपनी पूरी कहानी साधुको सुना दी। महात्माने शैलवतीको धैर्य दिलाया और कहा 'बेटी! तू मेरी धर्मकी पुत्री

है। तू जब तक जी चाहे यहाँ रह। तुझे किसी प्रकारका कष्ट न होगा।' शैलवतीका कष्ट महात्माके वचनोंसे कुछ शान्त हुआ और वह वहीं महात्माके पास रहने लगी। कुछ समयके बाद उसके एक लड़की हुई। महात्माने उसका नाम 'वनदेवी' रखा। वनदेवी आश्रममें रहकर पलने लगी।

उधर कुछ दिनों बाद रानी ज्ञानवतीने भी एक कन्याको जन्म दिया। उसका नाम 'धर्मवती' रखा गया। पुत्री उत्पन्न होने पर राज्यभरमें खुशियाँ मनायी गई। गरीबोंको धन दान दिया गया और धर्मवती लाड-चावके साथ महलोंमें पाली जाने लगी।

धीरे-धीरे दोनों कन्या बड़ी हुईं। धर्मवतीका राजकुमारियोंके समान पालन-पोषण हुआ और वनदेवी आश्रमके कठोर नियमोंमें रहकर बड़ी हुई। जब धर्मवती विवाहके योग्य हुई तब राजा धूमसेनने वरकी खोजमें दूत भेजे। दूत घूमते-फिरते राजा दुर्गारायके राज्यमें पहुँचे और उनके राजकुमार नयनपालको सुन्दर, युवा और गुणवान् जानकर शकुन दे आए। विवाहकी तिथि निकट आई। बारातकी तैयारी हुई और धूम-धामसे विवाह हो गया। राजा धूमसेनने बारातकी खूब सेवा की और बहुत-सा दान-दहेज देकर अपनी पुत्रीका डोला बिदा किया।

बारात पड़ाव डालती वापस चली। चलते-चलते वे उसी आश्रममें पहुँचे जहाँ रानी शैलवती रहती थी। सुन्दर आश्रम देखकर बारातने वहीं डेरा डाल दिया। बाराती आराम करने लगे और नयनपाल आश्रम देखने चला। जब उसकी दृष्टि आश्रमके उद्यान पर गई तो वह ताकताका ताकता रह गया। वनदेवी ऋषिकी पूजाके लिए पुष्प चुन रही थी। जब नयनपालको कुछ होश आया तो वह वनदेवीके समीप जा पहुँचा और उसका परिचय पूछा। वनदेवीने कहा 'मैं इस आश्रममें रहनेवाले ऋषिकी कन्या हूँ।' नयनपालने उसके सामने विवाहका प्रस्ताव रखा। वनदेवीने सरल स्वभावसे कह दिया कि 'इस बारेमें पिताजी जानें।' नयनपाल वनदेवीके

साथ आश्रममें पहुँचा और अपना प्रस्ताव दुहराया। ऋषि स्वतःप्राप्त प्रस्तावसे प्रसन्न हुए और वनदेवीका विवाह नयनपालके साथ कर दिया। नयनपालने अपने पिता राजा दुर्गारायको इस विवाहकी सूचना दी और वनदेवीकी भी विदा लेकर आगे चल दिया। बारात रंगचावके साथ राजधानीमें लौटी। स्त्रियोंने दोनों बहुओंकी अगवानी की और वनदेवीकी अधिक प्रशंसा की। उसकी प्रशंसासे धर्मवती को बहुत दुःख हुआ। राजकुमार नयनपाल भी वनदेवीके सौन्दर्य पर मुग्ध था।

धर्मवती अपनी सौतके सम्मानसे मन-ही-मन कुढ़ती थी। वह अवसरकी खोजमें थी जिससे वह वनदेवीसे बदला ले सके। एक बार जब राजकुमार नयनपाल किसी आवश्यक कामसे बाहर गये हुए थे तब धर्मवतीने किसीका बच्चा मारकर सोई हुई वनदेवीके पास फेंक दिया और बांदीके हाथ महाराज दुर्गारायको सूचना भिजवा दी कि वनदेवी बच्चोंको मार कर खा जाती है। सूचना मिलते ही राजा दुर्गाराय भागे आए और मरे हुए बच्चेको वनदेवीके पास पड़ा देखकर समझ गए कि दासी सत्य कह रही है। राजा दुर्गारायने उसी समय आज्ञा दी कि 'वनदेवीको राज्यसे निकाल दिया जाय।' धर्मवतीकी इच्छा पूर्ण हुई। वनदेवीको उसी क्षण राज्य छोड़कर जाना पड़ा। वह चलती-चलती उसी आश्रम पर पहुँची जहाँ उसका लालन-पालन हुआ था पर तब तक ऋषि और उसकी माताका देहान्त हो चुका था। वनदेवी उसी आश्रममें अकेली रहने लगी। जब राजकुमार नयनपाल वापस लौटा तो वनदेवी कहीं दिखायी न दी। उसने अपने पितासे पूछा तो उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया। सब सुनकर नयनपालने अपना सिर पीट लिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि 'वह वनदेवी की खोजमें जायगा और यदि वह न मिली तो वह भी लौटकर न आएगा।' राजकुमारकी बात सुनकर राजाको बहुत दुःख हुआ। उसने उसे बहुत समझाया पर राजकुमार समझ गया था कि यह सब धोका हुआ है। वह वनदेवीकी खोजमें घरसे चल दिया और जगह-जगह खोजता उसी आश्रममें पहुँचा

जहाँ वनदेवी रह रही थी। राजकुमारने वापस चलनेके लिए विनय की। वनदेवीने कहा 'उन लोगोंको मैं मुँह कैसे दिखाऊँ जिन्होंने मुझे यों अपमानित करके निकाला।' पर राजकुमारने हठ की और विश्वास दिलाया कि 'अब कोई उस बातको जुबान पर न ला सकेगा।' वनदेवी अपने पतिके विश्वास पर वापस लौट पड़ी और आनन्दपूर्वक रहने लगी। राजकुमार धर्मवतीको घृणाकी दृष्टिसे देखता, क्योंकि दासीके मुँहसे वह उसकी करतूत सुन चुका था। धर्मवती आत्मग्लानि और खेदमें तपती रहती, जब कि वनदेवी आनन्दसे दिन बिता रही थी।

कान्तादेवी लाल बहार

कहते हैं, किसी समय वासुकी नागके पौत्रको शाप लगा कि उसे नागलोक छोड़कर पृथ्वीमण्डल पर रहना होगा। और दो स्त्रियोंके होने पर उसे शापसे मुक्ति होगी। वासुकीका पौत्र शाप लगने पर नागलोकसे चल कर भूमण्डल पर आ पहुँचा और एक स्थान पर हारका रूप धारण करके पड़ रहा।

उसी दिन जगमोहन नामका राजपण्डित सवेरे स्नान करके उधरसे निकला तो नौलखा हार देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे उठाकर अपने घर लौट आया। जब ब्राह्मणीने हार देखा, तो बहुत प्रसन्न हुई। और उसे गलेमें पहन पानी भरने चलनेको तैयार हुई। ब्राह्मणने उसे समझाया, कि इतना कीमती हार पहन कर कूएँ पर जाना जोखम मोल लेना है। पर ब्राह्मणी अपनी सहेलियोंको हार दिखाकर उनपर अपना प्रभाव जमाना चाहती थी। ब्राह्मणी नहीं मानी और हार पहन कर कूएँ पर जा पहुँची।

जब वह इस विचित्र हारको पहनकर कूएँ पर गई, तो सब स्त्रियाँ हार देखने लगीं। वहाँकी पनिहारियोंने भी उस हारको देखा और ब्राह्मणीसे कहा 'यह हार तेरे योग्य नहीं।' और उसका पनिहारियोंके साथ झगड़ा हो गया। लड़-झगड़ कर ब्राह्मणी तो घर लौट आई, पर पनिहारियाँ जब महलमें पानी भरने गईं, तब वहाँके राजा सूरतसिंहकी रानी सोमवती को उस विचित्र हारकी सब कथा सुना आईं। रानी हारकी बात सुनकर उसे प्राप्त करनेके लिए लालायित हो उठी। और महाराजके महलमें पधारनेके समय आसनपाटी लेकर पड़ रही। जब महाराज महलमें पहुँचे और रानीको इस दशामें देखा तो कारण पूछा। महारानीने ब्राह्मणीके

हारकी चर्चा की और उसे मँगानेके लिए आग्रह किया। पहले तो महाराज ने रानीको समझाया पर जब वह न मानी, तो राजपण्डितको बुला भेजा और उसके आने पर सवा नौ लाख रुपया ब्राह्मणके सामने धरकर नौलखा हार माँगा। ब्राह्मण इतना धन देखकर प्रसन्न हुआ और हार लाकर महाराजको सौंप दिया और आशीर्वाद दिया—'महाराज! आपको पुत्र प्राप्त हो।' ब्राह्मण चला गया और रानी हार पाकर फूली न समाई।

ब्राह्मणके चले जानेपर रानीने हारको पहना और रातको सोते समय उसे उतार कर ताकपर धर दिया। दूसरे दिन नहा-धोकर उसने बाँदीसे हार लानेको कहा पर जब वह हार लेने गई, तो देखकर चकित रह गई। हारके स्थानपर एक बालक लेटा अँगूठा चूस रहा था। बाँदीने भागकर रानीको सूचना दी और रानीने महाराजको बुला भेजा। इस घटनासे सब चकित और प्रसन्न थे। महाराजको पुत्र प्राप्त हुआ था। उसकी इच्छा पूर्ण हुई थी। उन्होंने राज्यभरमें मुनादी करवा दी, कि पुत्र उत्पन्न हुआ है और राज्यभरमें खुशियाँ मनाई जाने लगीं। शुभ मुहूर्तमें लड़केका नाम लालबहार रखा गया।

श्रीनगरके महाराज सूरतसिंहके एक मित्र थे रत्नपुरीके महाराज भद्रसेन। उनके एक कन्या थी कान्तादेवी। कुछ समय बाद भद्रसेनने अपनी मित्रताको रिश्तेदारीमें बाँधनेके लिए अपने दूत श्रीनगर भेजे और अपनी कन्याका सम्बन्ध लालबहार से निश्चित कर दिया।

समय बीतता गया। जब राजकुमार लालबहार पाँच वर्षका हुआ, तो अचानक एक दिन महाराज सूरतसिंह बीमार हो गए। बहुत इलाज किया, पर किसी प्रकार भी रोग दूर न हुआ। जब महाराजने देखा कि अब बचनेकी कोई आशा नहीं, तब अपने मंत्रीको बुलाकर लालबहारका हाथ उसके हाथमें थमाकर अपना कर्तव्य निबाहनेकी प्रार्थना करने लगे। और मंत्रीने विश्वास दिलाया कि वे लालबहारका लालन-पालन अपने पुत्रके समान करेंगे।

महाराजकी मृत्युके बाद मंत्रीने राजपाट सँभाला और कुछ ही दिनों में अपने शासन-प्रबन्धसे प्रजाका मन हर लिया। अब वह सोचने लगा कि लालबहार जब युवा होगा, तब हमें यह राज्य-सुख छोड़ना होगा। क्यों न इससे पहले ही लालबहारको समाप्त कर दिया जाए, ताकि 'न रहे बाँस और न बजे बाँसुरी।' किन्तु मंत्रीके इस दुर्विचारका पता महाराज सूरतसिंहके एक विश्वस्त नौकरको चल गया और उसने महलमें पहुँचकर रानी सोमवतीको सब हाल कह सुनाया। जिसे सुनकर रानी चिन्तित हो उठी। उसने उसी समय राज्य छोड़नेका निश्चय कर लिया और कुछ धन-माल लेकर लालबहारके साथ महलोंसे चल दी और इसकी किसीको कानोंकान खबर न हुई।

माँ-बेटा चलते-चलते रत्नपुरीमें पहुँचे, जहाँकी राजकुमारीके साथ लालबहारका सम्बन्ध निश्चित हुआ था। रानी अपने पुत्रसहित वहाँ रहने लगी और लालबहारको उसी विद्यालयमें पढ़ने बिठा दिया, जहाँ राजकुमारी कान्तादेवी पढ़ने जाती थी। अब ये दोनों एक साथ पढ़ने-लिखने और खेलने-कूदने लगे। धीरे-धीरे इनका मिलना-जुलना यहाँ तक बढ़ा कि एक दूसरेको देखे बिना कल न पड़ती। धीरे-धीरे दोनों जवान हो गए।

उधर मंत्री निष्कण्टक राज्य करने लगा। कुछ समय बाद उसने सोचा कि रत्नपुरीके महाराज भद्रसेनकी लड़कीका सम्बन्ध लालबहारसे हुआ था, सो क्यों न अपने लड़केका विवाह वहाँ कर लिया जाये? और मंत्रीने एक पत्र भद्रसेनके पास लिखा, जिसमें लालबहारके विवाहका दिन निश्चित करनेके लिए कहा गया। सो पत्र-व्यवहारके बाद विवाहका दिन निश्चित हो गया और मन्त्रीने बारातकी तैयारी धूमधामसे आरम्भ कर दी।

इधर रत्नपुरीमें भी धूमधामसे विवाहकी तैयारियाँ आरम्भ हुईं। जब कान्तादेवीको पता चला तो उसे बहुत दुःख हुआ, क्योंकि वह तो लालबहारको अपना पति मान चुकी थी। उसने लालबहारको इसकी सूचना

दी और दोनोंने वहाँसे चुपचाप चलने की ठानी। चन्द्रकान्ताने मर्दाना वेश बनाया और दोनों दो तेज़ चलनेवाले घोड़ोंपर सवार होकर रत्नपुरीसे चल दिए।

कान्ता और लालबहार चलते-चलते चाँदपुरमें पहुँचे, जहाँका जागीरदार चन्दनमल सेठ था। चाँदपुर पहुँचकर इन्होंने ठहरनेके लिए स्थान खोजा और एक सरायमें जा पहुँचे। भटियारिन इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई और दोनोंने अपने घोड़े सरायमें बाँध दिए। लालबहार कान्ताको सरायमें छोड़कर घोड़ोंके लिए घास दाना लेने चल दिया। वह चलते-चलते एक पनवाड़िनकी दूकानपर पहुँचा। वह पनवाड़िन जादूगरनी थी। और पुरुषोंको मोहित करना जानती थी। जब उसने सुन्दर राजकुमारको अपने सामने देखा तो अपने जादूसे उसे वश कर लिया। जादूका डोरा लालबहारके गलेमें बाँध दिया और उसे अपने पास रख लिया।

जब बहुत देर तक लालबहार नहीं लौटा, तब कान्ता उसे ढूँढने चली। खोजती-खोजती वह भी पनवाड़िनकी दूकानपर जा पहुँची। लालबहारने उसे देखते ही सोचा, कि कहीं पनवाड़िन इसे भी अपने जादूके वश न कर ले और उसने कान्ताको संकेत द्वारा सब समझा दिया और कान्ता वहाँसे लौट आई। अब वह क्या करे? कुछ समझमें नहीं आया। कान्ता देवी मर्दाने वेशमें शहर घूमने निकली और घूमते-घामते वहाँके जागीरदारके दरबारमें जा पहुँची। उसने जागीरदारको प्रणाम किया और पूछने पर अपना परिचय दिया—'मैं रत्नपुरीके महाराज भद्रसेनका मुख्य मुनीम हूँ। महाराजने क्रुद्ध होकर मुझे राज्यसे निकाल दिया, इसलिए भटकता-घूमता यहाँ आ पहुँचा हूँ। मेरा नाम कान्तिप्रसाद है'। जागीरदार कान्तिप्रसादके रंग-ढंगसे बहुत प्रसन्न हुआ और अपने यहाँ उसे मुख्य मुनीमके पद पर रख लिया। धीरे-धीरे कान्तिप्रसादकी योग्यताकी चर्चा राज्य भरमें फैल गई और उसका प्रभाव बढ़ने लगा।

चाँदपुरके जागीरदार चन्दनमल सेठके इकलौती लड़की थी और वह

विवाहके योग्य हो चुकी थी, इसलिए सेठानीने अपने पतिसे पुत्रीके योग्य वर खोजने की बात की। सेठने अपने मुख्य मुनीम कान्तिप्रसादका नाम बताया। सेठानीको अपने पतिकी बात पसन्द आई। कान्तिप्रसाद सुन्दर था, सुडौल था और हर प्रकार कन्याके योग्य था। सेठानीने अपने पतिकी बातका अनुमोदन किया और सेठने कान्तिप्रसादको बुलाकर इस सम्बन्धकी चर्चा की। कान्तिप्रसाद इस चर्चासे मन-ही-मन घबराया। क्योंकि यह तो वही जानता था कि वह मर्द नहीं स्त्री है, इसलिए उसने कहा—'महाराज! मैं आपका दास हूँ, इसलिए आपकी कन्याके उपयुक्त नहीं हूँ। आप इसके लिए कोई उचित वर खोजें तो अच्छा रहेगा'। पर सेठने जिद्द की और हार कर कान्तिप्रसादको हाँ करनी पड़ी।

सेठने धूम-धामसे विवाहकी तैयारी की। इकलौती कन्या और घर भरा पूरा, तब भी कोई कोर कसर कैसे रहती। बारातकी तैयारी हुई और कान्तिप्रसाद धूमधामसे सेठके द्वारपर जा पहुँचा। लग्नके समय कान्तिप्रसाद अपने पति लालबहारकी कटार और पटका साथ लेते गया और अपने बहाने उसीसे सेठकी कन्याके साथ विवाह कर लाया। विवाहके बाद जागीरदारने कान्तिप्रसादको अपना पुत्र मान लिया और जागीरका अधिकार भी उसे सौंप दिया।

विवाह और जागीरका अधिकार पाते ही कान्तिप्रसादने सेनाकी एक छोटी-सी टुकड़ी ली और पनवाड़िनकी दूकानपर जा पहुँचा। इससे पहले कि पनवाड़िन सँभले और अपना जादू काममें लाए, उसका सिर धड़से अलग कर दिया गया और लालबहारके गलेमें बँधा जादूका डोरा काट दिया गया। कान्तिप्रसाद लालबहारको अपने साथ लेकर सेठके पास पहुँचा और अपने स्त्री होनेका भेद उसे कह सुनाया। सेठको यह सुनकर दुःख हुआ, पर कान्तिप्रसादने जो अब फिर कान्ताके रूपमें था, सेठसे कहा—'महाराज! मेरे पति श्रीनगरके महाराज सूरतसिंहके पुत्र हैं और इन्हींकी कटार और पटकेके साथ आपकी पुत्रीका विवाह हुआ है और

आजसे हम दोनोंके ये ही पति हैं' तो सेठ प्रसन्न हो गया। लालबहार अपनी दोनों पत्नियोंके साथ आरामसे चाँदपुरमें रहने लगा।

इसी प्रकार सुखपूर्वक कुछ समय बीत गया। दोनों लड़कियोंने देखा कि लालबहार न तो किसीके साथ बैठकर खाना खाता है और न कभी झूठा छोड़ता है। एक दिन दोनोंने मिलकर उसे घेर लिया और इस व्यवहारका कारण पूछा। लालबहारने उन्हें बहुत टाला, पर जब वे जिद्द पकड़ गईं तो उसने कहा—'मैं गंगाजीमें खड़े होकर इसका भेद बताऊँगा'। दोनों इस बातको मान गईं और ये सब गंगाके किनारे पहुँच गईं। लालबहारने वहाँ पहुँचकर फिर दोनोंको समझाया, पर जब वे किसी प्रकार मानती दिखाई न पड़ीं, तब लालबहार गंगाके पानीमें उतरने लगा। जैसे-जैसे वह पानीमें घुसता, पानी ऊँचा होता जाता। इसी प्रकार जब पानी छाती तक पहुँच गया, तब एक बार फिर लालबहारने उन्हें समझाना चाहा, पर वे भेद जाननेपर तुली थीं। लालबहारने सहसा गंगामें गोता लगाया और दोनोंने आश्चर्यके साथ देखा कि वहाँ लालबहारके स्थानपर एक सर्प फन उठाए था। यह देखकर दोनों चीख उठीं। किन्तु सर्पने उन्हें बताया कि 'वह वासुकी नागका पौत्र है। आज शापसे उसका निस्तार हुआ है और वह अपने लोकको जा रहा है।' इतना सुनते ही दोनोंने उसका पीछा किया और उसके साथ ये भी नागलोकमें जा पहुँचीं। कान्ताने नर्तकीका वेश बनाया और वासुकीके दरबारमें जा उपस्थित हुई, जो वर्षों बाद अपने पौत्रके लौटनेसे प्रसन्न था। लालबहार भी अपने दादा की गोदमें बैठा था।

वासुकीकी आज्ञा पाकर कान्ताने अपना नृत्य आरम्भ किया। नृत्य देखकर वासुकी प्रसन्न हो गया और कान्ताको इच्छानुसार वर माँगनेके लिए कहा। कान्तादेवीने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! आप यदि प्रसन्न हैं, तो पुत्र प्राप्तिका वरदान दीजिए'। वासुकीने कहा—'ऐसा ही होगा'। पर कान्तादेवी तभी बोल उठी—'महाराज! वह होगा कैसे? जब कि मेरा पति

गोदमें बैठा है'। वासुकीको समझते देर न लगी कि नर्तकी उसके पौत्रकी पत्नी है। वासुकीने कहा—'पुत्री ! आज इतने वर्षों बाद पौत्रके लौटनेसे मैं बहुत प्रसन्न था, पर तुमने मुझे ठग लिया। मैं इसे मृत्युलोकमें जानेके लिए फिर तुम्हें सौंपता हूँ। तुम आनन्दपूर्वक वहाँ रहो और सन्तानके साथ सुखपूर्वक समय बिताकर यथासमय इसे लौटनेकी आज्ञा दो'। पिता-महकी आज्ञा पाकर लालबहार अपनी दोनों पत्नियोंके साथ लौट पड़ा। वे सीधे रत्नपुरी पहुँचे और कान्ताने सब हाल अपने पितासे कह सुनाया। मन्त्रीकी धोखेबाजीसे वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे मिलनेके लिए रत्न-पुरी बुला भेजा। जब मन्त्री वहाँ पहुँचा, तब उसे क़ैद कर लिया और राज्यपर अधिकार कर लिया गया। लालबहार अपनी पत्नियों और माताके साथ राज्यमें फिर लौट आया, और सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

सरवर नीर

एक समयकी बात है कि अम्बपुरीमें राजा अम्ब राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम अम्बली था। इनके दो पुत्र थे—सरवर और नीर। महाराज अम्ब धर्मात्मा और प्रसिद्ध दानी थे। इनके द्वारसे कोई भिक्षुक और साधु-ब्राह्मण खाली हाथ न लौटता था।

एक दिन एक साधु महाराज अम्बके दरबारमें आया और महाराजसे तीन वचन लेकर दानमें राज्य माँगा। महाराजने विना किसी प्रकारकी आनाकानीके राज्य साधुको दान करके दे दिया और अपनी स्त्री और बच्चोंको साथ लेकर विदेशकी ओर चल दिया, ताकि कहीं पहुँच कर कुछ काम कर सके और अपने परिवारका पालन-पोषण कर सके।

ये चारों चलते-चलते उज्जैन नगरमें पहुँचे और एक भटियारीके यहाँ सरायमें ठहर गए। भटियारीने महारानी अम्बलीका सौन्दर्य देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। इधर एक सौदागर जिसके पास व्यापारके लिए बहुत-सा धन था वहीं आकर ठहरा और अम्बलीको देख कर मोहित हो गया। सौदागरने भटियारीसे कहा—'यदि तू किसी प्रकार इस स्त्रीको मेरे पास भेज दे तो मैं तुझे मालामाल कर दूँ।' भटियारीने सौदागरको सहायताका वचन दे दिया।

महाराज अम्ब का उज्जैनमें कोई ठिकाना न था और नहीं कोई काम-काज। भटियारीने उनसे बातचीत की और उन्हें अपने यहाँ नौकर रख लिया। दूसरे दिन सवेरे ही महाराज अम्ब भटियारीके लिए जंगलसे जब लकड़ियाँ लेने गए तब भटियारीने महारानीसे कहा—'तुम्हें सौदागरका खाना लेकर जाना है'। अम्बलीने परपुरुषके सामने जानेसे इनकार किया तो भटियारीने नौकरीसे अलग कर देनेका भय दिखाया। पर जब अम्बली

तब भी जानेको तैयार न हुई तब भटियारीने स्वयं साथ चलनेकी बात कही और अम्बलीको सौदागरकी नौकाओंके पास चलनेके लिए तैयार कर लिया। सौदागरका भोजन तैयार हुआ। अम्बलीने उसे एक थालमें परोसा और उसे लेकर भटियारीके साथ चल दी। सरवर और नीर सराय में रहे। जब अम्बली और भटियारी सौदागरके स्थान पर पहुँचीं तब भटियारीने सौदागरको संकेत किया। सौदागर समझ गया और धनकी थैली भटियारीके हाथमें थमा दी। अम्बली कुछ न समझ पाई और भोजन देने नावमें चली गई। जैसे ही वह नाव पर पहुँची कि सौदागरने लङ्गर खोल दिए। नाव बह चली और अम्बली रोती-पीटती रह गई। भटियारी थैली लेकर सरायमें लौट आई।

जब महाराज अम्ब जंगलसे लौटे तब अपनी स्त्रीको न देख कर बहुत दुःखी हुए। सरवर और नीरने अपनी माँके भटियारीके साथ जाने और फिर लौट कर न आनेकी बात अपने पिताको सुनाई तो वे भटियारीके पास पहुँचे पर भटियारी भी एक ही काइयाँ थी। 'उलटा चोर कोतवालको डाँटे' का उदाहरण सामने आया। भटियारीने लाल-लाल आँखें निकाल कर महाराजसे कहा—'वह चाण्डालनी मेरा मुँह काला करके सौदागरके साथ भाग गई। मैं क्या करती?' और महाराज पश्चात्ताप करते दुःखी होते लौट आए। उन्होंने सरवर और नीरको साथ लिया और उसी समय सराय छोड़ कर रोते-धोते आगे चल दिए।

तीनों बाप-बेटे चले जा रहे थे कि सामने एक नदी दिखाई दी। महाराज अम्बने दोनों बच्चोंमें से एकको किनारे बिठाया और दूसरेको अपनी पीठ पर लादा और तैरते हुए नदीसे पार हो गए। जब उसे दूसरे किनारे पर बिठा कर लौटने लगे तो पानीके बहावमें बह गए। दोनों भाई सरवर और नीर देखते रह गए। माँ गई, पिता बह गए और दोनों भाइयोंके बीचमें भयानक नदी। बेचारे दोनों डरते भय खाते अलग-अलग किनारों पर बैठे रोते रहे। भयानक अन्धेरी रात बीती। सवेरा हुआ और

कुछ धोबी कपड़े धोने आ पहुँचे। जब उन्होंने दोनों बच्चोंको रोते देखा तो उनको फिर इकट्ठा किया। सारी घटना सुनी और दोनोंको अपने पास रख लिया।

महाराज अम्ब बहते-बहते बहुत दूर निकल गए। भाग्यसे कुछ मछुओं ने उन्हें बहते देख लिया और बाहर निकाल लिया। महाराजने बाहर निकल कर मछुओंका धन्यवाद किया और पासकी नगरीकी ओर चल दिए। उस नगरीका नाम चन्द्रपुरी था। वहाँ महाराजके कोई सन्तान न थी और वे मरते समय आज्ञा कर गए थे कि जो भी व्यक्ति नगरके बाहर पहली बार मेरी अर्थीके सामने आए उसीको यहाँका राज्य सौंप दिया जाए। भाग्य-वश महाराज अम्ब ही वे भाग्यशाली व्यक्ति थे जो नगरीसे निकलती अर्थी के सामने सबसे पहले आए। मन्त्रियों और अधिकारियोंने अम्बका स्वागत-सत्कार किया और स्वर्गीय महाराजका संस्कार करनेके बाद अम्बको विधि-वत् वहाँका राज्य सौंप दिया। महाराज अम्ब फिर न्यायपूर्वक राज्य करने लगे।

सरवर और नीर धोबियोंके पास पलते-पलते बड़े हुए तो उन्होंने सेनामें भर्ती होनेका विचार किया। वे धोबियोंसे विदा हो कर चन्द्रपुरीमें आए और सेनामें भर्ती हो गए। इन्हें सेनामें काम करते अभी कुछ ही समय बीता था कि एक व्यापारी वहाँ आया। उसके पास बहुत-सा धन था, इस लिए उसने महाराजसे दो पहरेदार माँगे जो उसकी नावोंकी रक्षा कर सकें। महाराजने सरवर और नीरको पहरा देनेके लिए सौदागरके साथ भेज दिया। रातके समय सरवर और नीर पहरा दे रहे थे कि उन्हें नींद आने लगी। तब नींदको भगानेके लिए वे कहानी कहने लगे। कहानी क्या थी, आत्मकथा थी, जिसे वे दोहरा रहे थे। रानी अम्बली उसी नावमें सब सुन रही थी। उसने उन दोनोंको पहचान लिया और दूसरे दिन सौदागरसे कहा—'तेरे पहरेदारोंने बहुत-सा धन चुरा लिया है। यदि आवश्यकता हो तो मैं चोरी दरबारमें सिद्ध कर सकती हूँ'। अम्बलीकी बात सुनकर सौदागर

को पहरेदारों पर क्रोध आया। उसने महाराजसे पहरेदारोंकी शिकायत की। महाराजने सौदागरकी बात सुनकर दोनों लड़कोंको बुलाकर पूछा और दोनों महाराजकी बात सुनकर चकित रह गए। सरवर और नीरके निवेदन करने पर महाराजने चोरी सिद्ध करनेके लिए सौदागरको बाध्य किया, पर सौदागर तो अम्बलीके कहने पर शिकायत लेकर आया था। वह क्या बताता? उसने निवेदन किया कि—'रातके समय मेरी स्त्रीने इन्हें चोरी करते देखा है।' महाराजने सौदागरकी स्त्रीको दरबारमें उपस्थित होनेकी आज्ञा दी और अम्बली पर्देके भीतर राजदरबारमें आ उपस्थित हुई। जब अम्बलीसे चोरीके बारेमें पूछा गया तो उसने कहा—'इनसे रातवाली कहानी सुनी जाए'। महाराजने दोनों पहरेदारोंको अपनी रातवाली कहानी सुनानेका आग्रह किया। सरवर और नीरने परस्पर एक दूसरेकी ओर देखा और तब आत्मकथा कहना आरम्भ किया। महाराज जैसे-जैसे कथा सुनते जा रहे थे वैसे-वैसे आँखोंसे आँसू बहाते जा रहे थे और सारी सभा स्तम्भित-सी बैठी सुन रही थी। जब वे पूरी कथा सुना चुके तब महाराजने प्रश्न किया 'तब वह रानी कहाँ गई?' और सरवर-नीरने इस बारेमें अपना अज्ञान प्रकट किया। पर पर्देमें बैठी रानीने कहा—'महाराज! उसकी कथा मुझे मालूम है।' महाराजने रानीसे आगेकी कथा सुनानेको कहा तो अम्बली ने कहा—'महाराज! यह सौदागर ही कहानीका वह सौदागर है जो इन बच्चोंकी माँको हर ले गया था और मैं ही अभागी वह माता हूँ जो कहानी में इन बच्चोंकी माँ थी।' रानीकी इतनी बात सुनते ही सौदागरने चुपकेसे खिसकना चाहा पर महाराजने उसे उसी समय बन्दी करनेकी आज्ञा दी और उठकर अपने बच्चोंको गले लगाया और रानीको अपने महलमें पहुँचाया। सौदागरको उचित दण्ड दिया गया और महाराज अपने परिवार-सहित आनन्दसे रहने लगे।

किरणमयी-पृथ्वीसिंह

शाहंशाह अकबरके दरबारमें बूँदीगढ़के एक हाडा राजपूत सिपाह-सालार थे जिनका नाम था पृथ्वीसिंह। पृथ्वीसिंहका विवाह बुन्देलखण्डमें हुआ था और उनकी पत्नीका नाम किरणमयी था। पृथ्वीसिंहकी सुसरालसे गौणेका पत्र आया और पृथ्वीसिंहने शाहंशाहसे दो सप्ताहकी छुट्टी माँगी। शाहंशाहने छुट्टी दे दी पर ताकीद कर दी कि दो सप्ताहसे अधिक न लगने पाएँ। पृथ्वीसिंह दरबारसे चल दिया और समय पर सुसराल जा पहुँचा।

पृथ्वीसिंहको देखकर किरणमयीका परिवार बहुत प्रसन्न हुआ और हर प्रकार उसकी सेवामें जुट गया। पृथ्वीसिंह कुछ दिन सुसराल ठहरे और फिर विदा माँगी। किरणमयीके पिताने धूमधामसे अपनी पुत्रीका डोला चलता किया और पृथ्वीसिंह किरणमयीको साथ लेकर अपने घर बूँदीगढ़ आ पहुँचे।

दिन हँसी-खुशीमें बीतने लगे। पृथ्वीसिंहको न चढ़ेकी चिन्ता रही न छिपेका ग़म और दो सप्ताह बीत गये। छुट्टी समाप्त होने पर उसे ध्यान आया और दरबार चलनेके लिए तैयार हो गया। किरणमयी अपने पतिको जाते देख न रुक सकी। उसने एक दिन अपने पतिको और रोक लिया और पृथ्वीसिंह अपनी प्रियाकी बात न टाल सका।

पृथ्वीसिंह दरबारमें एक दिन बाद पहुँचा और शाहंशाहने देरीका कारण पूछा। सीधे-सच्चे राजपूतने किरणमयीके प्यार और प्रार्थनाका सीधे-सादे शब्दोंमें वर्णन कर दिया और इसीको देरीका कारण बताया। दरबार में एक दूसरे सिपाहसालार शेरखाँ भी उपस्थित थे जो पृथ्वीसिंहसे मन ही मन जलते थे। उसने अवसर देखकर कहा—'स्त्रीका ऐसा भी क्या प्यार

जिसमें दरबारका भी ध्यान न रहे ?' पृथ्वीसिंह इस वारके लिए तैयार न थे, फिर भी शेरखाँकी बात सुनकर चुप न रह सके। पृथ्वीसिंहने कहा—'शेरखाँ ! मेरी स्त्री पतिव्रता है इसलिए उसकी प्रथम प्रार्थना मानना मेरा कर्तव्य हो जाता है।' शेरखाँने पतिव्रता शब्द पर अट्टहास किया और कहा—'दोस्त ! संसारमें कोई स्त्री पतिव्रता नहीं। जिसके ढोलका पोल जब तक बना रहे तभी तक ठीक है।' शेरखाँकी बात सुन कर पृथ्वीसिंह तिलमिला उठा और उसने अपनी पत्नीके पातिव्रत धर्म पर फिर ज़ोर दिया, और शेरखाँने किरणमयीकी परीक्षाकी शाहंशाहसे आज्ञा माँगी। शाहंशाहने आज्ञा तो दी, पर एक शर्तके साथ कि जो हारेगा उसे फाँसीका फन्दा स्वीकार करना होगा। दोनों सिपाहसालारोंने इस शर्तको स्वीकार कर लिया और शेरखाँ किरणमयीकी परीक्षा लेने बूँदीगढ़की ओर चल दिया।

शेरखाँ जानता था कि हिन्दू स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं और विना छल किये पृथ्वीसिंहसे जीतना असम्भव है। इसलिए उसने एक दूतीको बुलाकर सब भेद कह सुनाया और किरणमयीके पाससे उसके पतिकी कोई निशानी लानेकी प्रार्थना की। मुँहमाँगे इनामके लोभमें दूती निशानी लेने चल पड़ी और किरणमयीके महलमें जा पहुँची। जब किरणमयीने उसका परिचय पूछा तो दूतीने स्वयंको पृथ्वीसिंहकी फूफी बताया। किरणमयी अपनी फूफसको देख कर बहुत प्रसन्न हुई और उसके स्वागत-सत्कारमें लग गई।

दूती किरणमयीके पास रहने लगी और अवसरकी ताक़में रही। वह किरणमयीसे बहुत प्यार जिताती और किरणमयी पर अपना विश्वास जमाती गई। एक दो दिनमें ही दोनों आपसमें घुल-मिल गई। जब किरणमयी स्नान करने लगी तब दूतीने देखा कि किरणमयीकी जाँघ पर तिलका निशान है और वह उस निशानको देखकर बहुत प्रसन्न हुई। उसके मनकी अभिलाषा पूर्ण हुई, इसलिए अब और अधिक ठहरना व्यर्थ था। दूतीने चलनेकी आज्ञा माँगी पर किरणमयी इतनी जल्दी उसे कैसे

जाने देती ? किन्तु दूतीने कहा—'वेटी ! मैं तो तुझे आई सुनकर विना बुलाये देखने भागी आई और बिना बुलाये अधिक दिन ठहरना उचित नहीं होता, इसलिए तू मुझे अब जानेकी आज्ञा दे। पृथ्वीसिंहके आने पर तुम जब भी स्मरण करोगी, मैं फिर आ जाऊँगी।' किरणमयीको दूतीकी बात माननी पड़ी। अब किरणमयी इस चिन्तामें पड़ी कि फूफसको विदा करते समय क्या भेंट दे ? दूतीने उसे चिंतामें पड़े देख कारण पूछा तो भोली भाली किरण-मयीने कहा—'मुझे मालूम नहीं कि आपको क्या भेंट दूँ और वे यहाँ हैं नहीं, वस यही सोच रही थी।' दूतीने अवसर उचित समझा और किरण-मयीको प्यारकर बोली—'वेटी ! रामका दिया मेरे पास बहुत है। बस मैं तो एक प्रेमकी भूकी हूँ और तुझसे उसीको पाकर मैं अति प्रसन्न हुई हूँ। हाँ, एक चीज़ माँगूँ यदि तू दे सके तो ?' किरणमयी दूतीकी बात सुनकर खिल उठी। उसने प्रसन्नता पूर्वक कहा—'आप माँगिये, मैं दूँगी।' और दूतीने हँसते हुए कहा 'बहू ! मेरे पास पृथ्वीसिंहकी कोई निशानी नहीं है। यदि तुम यह कटार मुझे दे दो तो बहुत गुण मानूँ। दूतीकी बात सुन कर किरणमयीका मुँह उतर गया। उसने कहा—'मुझे देनेमें कोई इनकार नहीं पर यह कटार उन्होंने दरबारमें जाते समय मुझे निशानीके रूपमें दी थी, इसे देने पर वे क्रुद्ध होंगे'। दूती बोली—'वेटी ! मैं परायी थोड़े ही हूँ ! पहले तो वे क्रुद्ध न होंगे। और यदि वे क्रुद्ध हों तो मैं इसे लौटा दूँगी' और किरणमयीने अपने पतिको कटार दूतीको सौंप दी। दूती महलसे विदा हो कर चल दी और सीधी शेरखाँके पास पहुँची। वहाँ पहुँचते ही दूतीने अपना इनाम माँगा और शेरखाँ पृथ्वीसिंहकी कटार और जाँघके तिलकी निशानी पाकर फूला न समाया। उसने दूतीको बहुत-सा रुपया देकर प्रसन्न किया और कटार लेकर दरबारमें जा उपस्थित हुआ। बादशाहने उसे देखते ही पूछा और शेरखाँ गर्वके साथ गरदन ऊँची करके बोला—'बादशाह सलामत ! आपका खादिम कभी नाकाम लौट सकता है ? हुजूर ! हमने पृथ्वीसिंहकी रानीका सतीत्व खूब देखा और हफ्ता भर खूब आनन्दसे

कटा।' पृथ्वीसिंह शेरखाँकी वात सुन कर तिलमिला उठा, पर इससे पहले कि वह कुछ बोले, बादशाहने स्वयं पूछा—'हम कैसे यक़ीन करें कि तुम्हें सफलता मिली है?' और शेरखाँने पृथ्वीसिंहकी कटार निकाल कर बादशाह के क़दमों पर रख दी। बादशाहने व्यङ्ग्यभरी निगाहसे पृथ्वीसिंहकी ओर देखा, जिस पर कटार देखते ही घड़ों पानी पड़ चुका था। उससे कोई उत्तर न बन पड़ा। शेरखाँने फिर कहा—'बादशाह सलामत! दूसरी निशानी और लीजिए। पृथ्वीसिंहकी रानीको दाईं जाँघ पर तिलका निशान है।' इतना सुनते ही बादशाहने हुक्म दिया कि 'शर्तके मुताबिक पृथ्वीसिंह को फाँसीका हुक्म दिया जाता है'। बादशाहका फरमान सुन कर दरबारी सन्नाटेमें रह गये। दरबार बरखास्त हुआ और दरबारी आपसमें इस निर्णयकी चर्चा करते चल दिये। पृथ्वीसिंहके मित्र दुःखी थे और शेरखाँ के प्रसन्न। चर्चाका विषय भी उसीके अनुसार दो भागोंमें बँटा हुआ था। पृथ्वीसिंहने बादशाहसे अपनी पत्नीसे मिलनेकी आज्ञा माँगी और वह किरणमयीसे भेंट करने बूँदीगढ़की ओर चल दिया। पृथ्वीसिंहको देख कर किरणमयी बहुत प्रसन्न हुई, पर पृथ्वीसिंहका खून जल गया। उसने किरणमयीको खूब फटकारा और अपनी कटार माँगी। पर कटार तो वह अपने हाथसे खो चुकी थी। किरणमयीने अपनी हज़ार सफाई पेश की पर पृथ्वीसिंहको विश्वास कैसे आता? वह दरबारकी ओर लौट पड़ा।

पृथ्वीसिंहके लौट जानेपर किरणमयी फफक-फफककर रोने लगी। झूठे लांछनसे उसका शरीर जला जा रहा था। पर वह क्या करती? उसी समय उसने देखा कि कुछ नट और नटियाँ अपना खेल दिखाने और इनाम पाने वहाँ आ पहुँची हैं। किरणमयीको सहसा एक बात सूझी और उसने नटोंको अपने पास बुलाकर कहा कि 'मैं तुम्हें मुँहमाँगा इनाम दूँगी यदि तुम मेरे साथ शाही दरबारमें अपना कर्तब दिखाने चलो' और नट राज़ी हो गये।

किरणमयीने अपना नटियों जैसा वेश बनाया और मण्डलीकी सरदार

बनकर राजधानीकी ओर चल दी। वहाँ पहुँचकर उसने बादशाहसे खेल दिखानेकी आज्ञा माँगी। शाही ठाटसे तमाशेकी तैयारियाँ हुईं और अपने सरदारोंके साथ बादशाह तमाशा देखने अपने आसनपर आ विराजे। किरणमयीके साथियोंने अपना खेल आरम्भ किया और मुँहमाँगा इनाम पानेकी आशामें वे कर्तब दिखाये कि सभी सभासद और बादशाह सलामत झूम-झूम गये। खेल समाप्त हुआ और बादशाहने प्रसन्न होकर किरणमयीको इनाम माँगनेके लिए कहा। किरणमयीने बादशाहसे तीन वचन माँगे ताकि बादशाह अपनी बातसे न फिर जाये। बादशाहने विश्वास दिलाया कि वह मुँहमाँगी वस्तु उन्हें देगा। बादशाहके मुँहसे इतनी बात सुनते ही किरणमयीने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—'हुजूर! आपके दरबारमें हमारा चोर है जिसने कल रात हमारा डेरा लूट लिया हमें तङ्ग किया और मेरी इज्ज़त खराब की। आप यदि प्रसन्न हैं तो हमारा चोर हमारे हवाले कीजिए।' किरण-मयीकी बात सुनते ही चारों ओर सन्नाटा छा गया। बादशाहने चोरका नाम पूछा और उसने नाम बताया 'सिपाहसालार शेरखाँ।' बादशाहने पास ही बैठे शेरखाँ पर निगाह डाली जिसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। शेरखाँने मारे क्रोधके अर्ज़ की—'हुजूर! यह नटी झूठ बकती है। मैंने इनका डेरा देखा तक नहीं, उसे लूटना और इज्ज़त खराब करना तो दूर।' शेरखाँकी बात सुन कर किरणमयी फिर दहाड़ी—'हुजूर! यह झूठा है। रातभर मेरे साथ रहने पर भी अब यह मुझे पहचाननेसे इनकार करता है।' और शेरखाँने बादशाहकी दुहाई दी और कहा—'हुजूर! यह सरासर कुफ़्र तोल रही है। मैं कुरानकी क़सम खाकर कहता हूँ कि आजसे पहले कभी इसकी शक्ल तक नहीं देखी।' किरणमयीने कहा—'हुजूर! यह झूठा है। यह ज़ुबानी कुरानकी क़सम खा रहा है। इसके हाथ पर कुरान रख कर पूछा जाए, तब यह झूठ न बोल सकेगा।' बादशाहने कहा 'और अगर कुरान हाथमें लेकर यह कहे कि मैं तुम्हें नहीं जानता तब?' किरणमयीने कहा 'तब मैं आपकी चोर हूँगी और आप जो चाहें

मुझे दण्ड दें।' बादशाहने कुरान मंगाया और शेरखाँके हाथ पर घर दिया। शेरखाँ ने क़ाबेकी ओर मुँह करके कहा—'मैंने आज तक इस औरत की कभी शक्ल भी नहीं देखी।' बादशाहने क़हरभरी निगाहसे किरणमयी की ओर देखा और कहा–'अब बोल नटी! तुझे क्या सज़ा दी जाए? तूने हमारे एक सिपाहसालार पर तुहमत लगाई है। बोल, इसकी सज़ा तुम्हें क्यों न दी जाए?' पर किरणमयी अपनी जगहसे हिली नहीं। उसने हाथ जोड़ कर अर्ज़ की–'बादशाह सलामत! मैं सच कहती हूँ। एक दिन नहीं हफ्ता भर यह मेरे साथ रहा है।' अब शेरखाँ दहाड़ा–'हुजूर! सुन लीजिए इसकी बकवास। यह कुरान पर भी यक़ीन नहीं लाती।' किरणमयी बोली–'हुजूर! जब तक मेरे पति पृथ्वीसिंहको नहीं छोड़ा जाता और वही सज़ा इस झूठे शेरखाँको नहीं दी जाती तब तक मैं कैसे मान लूँ कि यह सच बोल रहा है?' किरणमयीकी बात सुन कर सभासद और स्वयं बाद-शाह हैरान रह गये। पृथ्वीसिंहकी पत्नी नटीके वेशमें? और शेरखाँ क़ुरान हाथमें लेकर कह रहा है कि मैं इसे क़तई नहीं जानता? आजसे पहले कभी इसकी सूरत भी नहीं देखी?' बादशाहकी निगाह एक बार फिर शेरखाँकी ओर मुड़ी, जो लज्जित-सा सिर झुकाये खड़ा था। बादशाहने आज्ञा दी–'सिपाहसालार पृथ्वीसिंहको सम्मानके साथ रिहा किया जाए और शेरखाँको फाँसीका फन्दा चूमनेकी इन्तज़ारके लिए क़ैदकी कालकोठरीमें बन्द कर दिया जाये।' किरणमयी इस निर्णयसे खिल उठी और शेरखाँ सूखे हुए पातके समान काँप कर किरणमयीके चरणोंमें जा गिरा। शेरखाँ ने किरणमयीको माँ कह कर प्राण-दान माँगा और सब लोगोंने देखा कि शेरखाँ के माँ कहते ही किरणमयीका मुख-मण्डल स्निग्ध हो गया। उसने अपने और अपने पतिके शत्रुको क्षमा किया और पृथ्वीसिंहको छुड़वा कर बूँदीगढ़की ओर लौट पड़ी। पृथ्वीसिंह अपनी पत्नीकी चतुराई और सतीत्वसे बहुत प्रसन्न हुआ और नटोंकी मण्डलीको बहुत-सा इनाम देकर विदा किया।

चन्द्रहास

चन्द्रहास जब माताके गर्भमें आया तभी उसके पिताकी मृत्यु हो गई। महाराजकी मृत्यु हो जानेपर मन्त्रीने सोचा क्यों न रानियोंको समाप्त कर दिया जाय, ताकि राज्यके उत्तराधिकारीकी सम्भावना ही न रहे। किन्तु मंत्रीके इस विचारकी सूचना किसी प्रकार रानियोंको भी मिल गई और सबने मिलकर निश्चय किया कि छोटी रानीको जो गर्भवती है महलसे तुरत विदा कर दिया जाय। ताकि यदि समय पाकर उसे पुत्रकी प्राप्ति हो, तो राज्यका उत्तराधिकारी सुरक्षित रह सके और निश्चयके अनुसार चन्द्रहासकी माताको रानियोंने महलसे चुपकेसे विदा कर दिया। मन्त्रीने निश्चयके अनुसार सब रानियोंको एक-एक कर मौतके घाट उतार दिया।

चन्द्रहासकी माँ महलसे विदा होकर जिधर उसका मुँह उठा चल दी। उसके पास इतना अवसर ही न था कि किसी ठीक-ठिकानेपर पहुँच सके। वह चलती-चलती जब थक गई तो एक स्थानपर आराम करने बैठ गई। रास्तेकी थकी-हारी और भूककी सताई। इतनेमें एक स्त्रीने उसका परिचय पूछा और रानीने कह दिया 'भाग्यकी मारी हूँ और अपना समय काटनेकी चिन्तासे इधर चली आई हूँ'। उस स्त्रीने जो धायका काम करती थी रानीकी बात सुनी और दयावश उसे अपने घर ले गई। अब रानी धायके घर रहकर अपना भरण-पोषण करने लगी।

समय बीता। सन्तान होनेका समय आया। धायने पूरी सहायता की और रानीने एक पुत्रको जन्म दिया। लड़का चन्द्रमाके समान सुन्दर और स्निग्ध था। नाम चन्द्रहास रखा गया। धाय और उसकी सहेलियोंने खूब रंग चाव किया। चन्द्रहास धीरे-धीरे बढ़ने लगा, किन्तु उसकी माताका हाथ भी अधिक दिनों उसके सिरपर न रह सका। वह बीमार

हुई और चन्द्रहासको रोते-बिलखते छोड़ स्वर्ग सिधारी। धायने अवसर जानकर चन्द्रहासको विद्यालयमें पढ़ने भेज दिया।

कुछ समयके बाद मंत्री जो अब राजगद्दी सँभाल चुका था, आश्रम की व्यवस्था देखने आया। आश्रमको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सब विद्यार्थियों और विद्वानोंको भोज दिया और भोजके बाद दक्षिणाका समय आया। सब छात्रोंने मन्त्रीकी दी हुई दक्षिणा सहर्ष स्वीकार की, पर जब चन्द्रहासकी बारी आई तब उसने दक्षिणा ग्रहण करनेसे इनकार कर दिया। मन्त्रीको बहुत क्रोध आया। उसे यह अपना अपमान दिखाई पड़ा, किन्तु आश्रमके आचार्यने मन्त्रीका क्रोध शान्त करनेके विचारसे कहा—'राजन्! यह ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय कुमार है और इसके लक्षणोंसे जाना जा सकता है कि यह एक दिन अवश्य महाराजका पद प्राप्त करेगा'। आचार्यकी बात-चीतने मन्त्रीपर उलटा प्रभाव किया। उसने आज्ञा दी कि 'इस उद्दण्ड बालकको जल्लादोंके हाथों सौंप दिया जाय ताकि राज्य प्राप्त करनेसे पहले ही यह समाप्त हो जाय'। मन्त्रीकी आज्ञासे चन्द्रहासको बाँध लिया गया और जल्लादोंको सौंप दिया गया। आचार्य खड़े मुँह ताकते रह गये।

जल्लाद चन्द्रहासको साथ लेकर मन्त्रीकी आज्ञा पालनके लिए जंगल की ओर चल दिये। जब वे बहुत दूर निकल गये तब चन्द्रहासने गिड़-गिड़ाकर जल्लादोंसे अपने प्राणोंकी भीख माँगी। जल्लाद पहले ही इस अन्यायके विरुद्ध थे। वे जानते थे कि चन्द्रहास निर्दोष है पर क्या करते? मन्त्रीने आज्ञा दी थी कि इसकी दोनों आँखें और कटोरा भर रक्त निशानी के लिए लेकर आयें और चन्द्रहासको छोड़ देनेपर आँखों और रक्तका क्या प्रबन्ध किया जाय? यही एक समस्या थी जो चन्द्रहासके प्राणदानमें बाधक थी। अन्तमें जल्लादोंने मिलकर निर्णय किया 'जो भी हो, हम इस अन्यायमें सम्मिलित न होंगे, और चन्द्रहासकी प्राणरक्षा करेंगे'। तब जल्लादोंने चन्द्रहासको इस शर्तपर छोड़ दिया कि 'वह फिर कभी राजधानी

की ओर मुँह न करेगा'। चन्द्रहास चला गया और जल्लाद मृगकी आँखें और कटोरा भर रक्त लेकर मन्त्रीके पास जा पहुँचे। आँखोंको देखकर मन्त्री बहुत हर्षित हुआ और उन्हें शत्रुके नेत्र समझकर पाँव-तले मसल डाला।

चन्द्रहास जल्लादोंसे छूटकर जंगलमें भटकता रास्ता खोजता एक ओर को चल दिया। वह चलते-चलते थक गया पर उसे बस्तीका कहीं नाम निशान तक दिखाई न पड़ा। अन्तमें आराम करनेके लिए एक वृक्षकी छायामें लेट गया।

भाग्यकी बात कि मंत्री भी शिकार खेलने उसी ओर आ निकला। उसने चन्द्रहासको सोते देखा तो पहचान लिया। चन्द्रहासको जीवित देखकर उसके तनमें आग लग गई। उसने सोचा यह ऐसे नहीं मरेगा। इसे प्रेमसे मारना चाहिए। मंत्रीने उसे जगाया और कहा—'भाई! मेरा एक सन्देश राजधानीमें मेरे पुत्रके पास पहुँचाना है, यदि तुम यह काम कर दो तो तुम्हें बहुत-सा इनाम दूँगा'। चन्द्रहास मान गया, और मंत्रीका पत्र लेकर राजधानीकी ओर चल दिया।

चन्द्रहास चलता-चलता राजधानीके निकट पहुँचा और आराम करने के लिए एक बागमें जा ठहरा। रास्तेकी थकावट और ठण्डी-ठण्डी वायु। उसे लेटते ही नींद आ गई। वह बाग मंत्रीकी लड़कीका था जो अब वहाँकी राजकुमारी कहलाती थी। राजकुमारी घूमने-फिरने आई तो अपने बागमें किसी पुरुषको सोते पाया। वह उसके निकट पहुँची और उस सुन्दर युवकको देखकर मोहित हो गई। उसी समय उसकी दृष्टि पत्रपर पड़ी। उसने धीरेसे पत्र निकालकर पढ़ा जिसमें लिखा था।

प्रिय पुत्र मदन!

पत्र लाने वालेको विष दे दो।

तुम्हारा पिता

लड़की पत्र पढ़कर स्तम्भित रह गई। एक क्षण उसे कुछ न सूझा कि वह क्या करे, क्या न करे। पर दूसरे ही क्षण उसके मस्तिष्कमें एक विचार उठा और उसने झाड़ीसे एक काँटा तोड़कर अपनी आँखका सुरमा लगाया और विषके साथ या और लिख दिया। राजकुमारी विषया पत्रको इकट्ठा करके जहाँसे लिया था वहीं धरके चली गई।

चन्द्रहासकी आँख खुली तो उसे बहुत देर हो चुकी थी। वह उठा और राजकुमार मदनसे मिलनेके लिए चल दिया। मदनने अपने पिताका पत्र पढ़ा तो बहुत प्रसन्न हुआ। अपनी बहन विषयाके लिए भेजा गया वर समझकर मदनने चन्द्रहासका खूब स्वागत किया और विधि-विधानसे विषयाके साथ उसका विवाह कर दिया।

कुछ दिनके बाद मंत्री अपनी राजधानीमें लौटा तो चन्द्रहासको जीवित देखकर उसे बहुत क्रोध आया। मंत्रीने अपने पुत्रको बुलाकर सब हाल पूछा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ पर अपना अभिप्राय अपने पुत्र पर भी प्रकट नहीं होने दिया और अब वह इस घातमें लगा कि चन्द्रहासको कैसे समाप्त किया जाय। उसने एक और योजना तैयार की और चन्द्रहासको बुलाकर कहा—'बेटा! हमारे यहाँकी प्रथाके अनुसार आपको कालीदेवीकी भेंट पूजा लेकर जाना चाहिए था, नहीं तो वे रुष्ट हुईं तो किसीका कुशल न होगा'। चन्द्रहास मान गया और भेंट पूजा लेकर चलनेको तैयार हो गया। मंत्रीने पहलेसे प्रबन्ध कर रखा था। जल्लादोंसे कह रखा था कि आज जो युवक कालीदेवीकी भेंट-पूजा ले कर आये उसे उसी स्थानपर कालीमाईकी भेंट चढ़ा दिया जाय। जल्लाद पहलेसे कालीदेवीके मन्दिरमें जा छुपे थे और पूजाके लिए आनेवालेकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

चन्द्रहास पूजाकी सामग्री लेकर मन्दिरकी ओर चल दिया। वह मन्दिर के निकट पहुँचा ही था, कि उसे राजकुमार मदन मिल गया। मदनने चन्द्रहासके हाथसे सामग्री ले ली और उसे मन्दिरके बाहर छोड़कर स्वयं

पूजा करने भीतर चला गया। जैसे ही पूजन करके मदनने देवीके आगे सिर झुकाया कि जल्लादोंने झपटकर उसका सिर धड़से अलग कर दिया और मंत्रीके पास पहुँचकर इस घटनाकी सूचना दी। मंत्री अपने शत्रुकी लाश-को देखने मन्दिरमें पहुँचा तो क्या देखता है कि उसीके पुत्र मदनकी लाश पड़ी है। मंत्रीने रो-रोकर अपना सिर पीट लिया और उस प्रभुको चन्द्रहासका रक्षक समझा। मंत्रीके और कोई सन्तान न थी, इसलिए राजपाट अपनी पुत्री और चन्द्रहासको संभालकर स्वयं विरक्त हो गया। चन्द्रहास विषयाके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा और न्यायपूर्वक राज्य करने लगा।

कुँवर निहालदे

पुराने समयकी बात है कि कीचागढ़में राजा चकवेबैन राज्य करते थे। उनके पुत्र मैनपालका युवावस्थामें ही देहान्त हो चुका था। उनका एक पौत्र था नर सुल्तान।

सुल्तान बचपनसे ही चञ्चल स्वभावका गुणी, वीर और अतिसुन्दर था। उसे शौक़ था अपना निशाना ठीक बाँधने का और इसी धुनमें वह तीर-कमान लेकर पनघट पर चला जाता और जब पनिहारियाँ घड़े सिर पर रख कर चलतीं तब वह घड़ोंको निशाना बनाता। उसे घड़ोंके टूटने और पनिहारियोंके दुःखी होनेका कष्ट न था। उसे केवल प्रसन्नता थी तो यह कि उसका निशाना नहीं चूकने पाया। दुःखी होकर पनिहारियाँ राजद्वार पर पहुँची और महाराज चकवेबैनसे सुल्तानकी शिकायत की। महाराजने आज्ञा दी कि सब पनिहारियोंको पीतलकी गागरें दे दी जाएँ।

दूसरे दिन जब सुल्तान पनघट पर पहुँचा तो सबकी गागरें पीतलकी थीं और वे तीर द्वारा भेदी न जा सकती थीं। सुलतानको इससे चिढ़ लगी। उसने लोहेके फलवाले तीर बनवाये और पीतलकी गागरोंको अपना निशाना बनाना आरम्भ कर दिया।

पीतलकी गागरोंकी बुरी दशा देख पनिहारियाँ रोती-पीटती फिर राजद्वार पर पहुँचीं। चकवेबैनने उनकी बात सुनी। मंत्रीको बुलाया और विचार-विमर्श किया और निश्चय किया कि प्रजाको कष्ट पहुँचाने के फलस्वरूप सुल्तानको बारह वर्षके लिए देश निकालेकी आज्ञा दी जाय। आज्ञा प्रसारित की गई और आज्ञापत्र नगरके द्वार पर चिपका दिया गया।

सुलतान जब शिकार खेलकर लौटा तो उसने नगरके द्वारपर आज्ञापत्र देखा और वह वहींसे विदेशके लिए लौट पड़ा। सहसा इस प्रकारकी आज्ञा पा कर उसे परेशानी हुई, पर उसने हिम्मत न हारी। वह चलता-चलता इन्द्रगढ़ पहुँचा, जहाँ राजा कामध्वज राज्य करते थे और जो राजा चकवेबैनके मित्र थे। कामध्वजने सुलतानका स्वागत किया। उसका पुत्र फूलसिंह सुलतानकी आयुका था इस लिए शीघ्र ही दोनोंकी गाढ़ी मित्रता हो गई।

दोनों मित्र एक साथ रहते। एक साथ खाना खाते, एक साथ घूमते-फिरते और एक साथ शिकार खेलने जाते। एक दिन जब कि दोनों शिकार खेलने गये, एक हरिणके पीछे घोड़ा छोड़ा। दोनों राजकुमार पीछा करते बहुत दूर निकल गये। हरिण हाथ नहीं आया। राजकुमार फूलसिंह इस दौड़में पीछे छूट गया। सुलतान थका-माँदा एक बागमें आराम करने बैठ गया। उसे कुछ स्त्रियोंकी हँसी सुनाई पड़ी। उसने इधर-उधर देखा तो एक ओर कुछ लड़कियाँ झूला झूलती दिखाई पड़ीं। उनमें एक कन्या अतिसुन्दरी थी जिसे देखते ही वह मोहित हो गया। उस लड़की ने भी सुलतानको देखा और सुध-बुध खोई-सी प्रतीत होने लगी। आकाश पर मेघ छाये थे। ठण्डी-ठण्डी वायु बह रही थी। सावनका महीना और झूलेके गीत। भाग्यवश उसी समय वर्षा होने लगी और सहेलियोंमें भगदड़ मच गई। इस भगदड़में किसीको सुध न रही कि राजकुमारी अब तक वर्षा में खड़ी भीग रही है। सब सहेलियोंके चले जाने पर राजकुमारी सुलतान के पास आई और उसका परिचय पूछा। सुलतानने अपना परिचय दिया और राजकुमारीका अता-पता पूछा। उसने बताया कि वह केलागढ़के राजा मघराजकी कन्या निहालदे है और यह बाग़ उसीका अपना है। दोनों प्रेम-बन्धनमें बँध चुके थे। दोनोंने परस्पर विवाह करनेका प्रण किया और निहालदे अपने महलमें चली गई।

निहालदेके चले जाने पर सुलतान इन्द्रगढ़ लौट आया और राजा

कामध्वजको पूरा विवरण कह सुनाया। राजा मघ और कामध्वज मित्र थे इसलिए उसने विश्वास दिलाया कि वह उन दोनोंके विवाह-सम्बन्धमें सहायता करेगा।

राजा कामध्वज अगले ही दिन केलागढ़की ओर चल दिया और राजा-मघसे मिलकर निहालदेके विवाहका प्रस्ताव रखा। राजा मघने कहा—'मुझे प्रसन्नता है कि आप इस प्रकारका प्रस्ताव लेकर पधारे हैं पर आपको पता होगा कि एक दानव मेरे राज्यमें उपद्रव कर रहा है। उसे शान्त रखनेके लिए मुझे नित्य एक व्यक्ति बलिके लिए भेजना पड़ता है, इस लिए मेरा प्रण है कि जो व्यक्ति उस दानवको समाप्त करेगा वही निहालदेके प्रेमका पात्र होगा'। कामध्वज मघराजकी बात सुनकर चुप हो गया और अपने राज्यको लौट आया। उसने शर्त सुल्तानके सामने रखी और सुल्तान दानवका सामना करनेके लिए तैयार हो गया। राजा कामध्वजने अपने पुत्र फूलसिंहको कुछ आदमियोंके साथ सुल्तानकी सहायताके लिए भेजा और ये सब दानवका सामना करनेके लिए केलागढ़ पहुँचे। जिस समय दानवको इनके आनेका पता चला, वह अपने स्थानसे दहाड़ा। उसकी दहाड़ सुनकर फूलसिंह और उसके साथियोंमें हलचल मच गई। दानवको देखते ही वे सब अपने-अपने प्राण लेकर भाग निकले। केवल सुल्तान मैदानमें बचा और दानवने पूरे वेगसे उस पर आक्रमण कर दिया। सुल्तानने उसका डट कर सामना किया और अन्तमें विजयी हुआ। राजा मघराजने प्रसन्न हो कर निहालदेका विवाह सुल्तानके साथ कर दिया। सुल्तान विदा लेकर इन्द्रगढ़ आया पर दुर्भाग्यने अब भी पीछा न छोड़ा था। फूलसिंहने जब निहालदेको देखा तो देखता ही रह गया। उसका मन विचलित हुआ और वह अपने मित्रके घातमें रहने लगा। एक दिन जब कि दोनों मित्र शिकार खेलने गये, अवसर जान कर फूलसिंहने पीछेसे उसपर तीर छोड़े पर सुल्तान बच निकला। इस घटनासे वह जान गया कि अब यहाँ रहना उचित न होगा और विदा लेकर वहाँसे चल दिया। उस

ने निहालदेको समझा-बुझा कर केलागढ़ उसके पिताके यहाँ भेज दिया और उसे बता दिया कि उसे पिताकी ओरसे बारह वर्षके लिए विदेशका दण्ड मिला हुआ है इसलिए जब तक वह समय पूरा नहीं होता तब तक उन्हें कष्ट भोगना ही होगा। निहालदेने अपने पतिसे कहा—'आप जा रहे हैं सो ठीक है। किन्तु यह याद रहे कि देश निकालेके दिन पूरे होते ही यदि तीजों (श्रावण शुक्ला तृतीया) के दिन आप न लौटे तो मैं जीवित चितामें प्रवेश कर जाऊँगी।' सुलतान समय पर लौटनेका वचन दे कर वहाँसे चल दिया।

सुलतान चलता-चलता नरवरगढ़में पहुँचा। वह घोड़ेपर सवार चला जा रहा था कि वहाँके राजा ढोलाकी रानी मरवणकी दृष्टि उस सुन्दर युवा वीरपर पड़ी। मरवण सिंहलद्वीपके राजा बुद्धसिंहकी लड़की थी। मरवणने उसे जाते देखकर बुलाया और पूछा—'क्यों भाई! तुम नौकरी करोगे'? और उसका भाई शब्द सुनकर सुलतानने अपना घोड़ा रोक दिया। सुलतानने कहा—'हाँ, यदि आप भाई समझकर अपने पास रखें'। मरवणने सुलतानको अपने यहाँ नौकर रख लिया और दोनों धर्मके बहन भाईके सम्बन्धमें बँध गये। सुलतान मरवणके महलका रक्षक था और वह उसे बहुत मानती थी। इन दोनोंका सम्बन्ध राजा ढोलाको फूटी आँख न भाता था। उसे इसमें व्यभिचारकी बू आती थी पर उसके पास इस बातका कोई प्रमाण न था इसलिए धीरे-धीरे समय अपनी चालसे चलता रहा और कोई विशेष घटना सामने न आई।

सुलतानको मरवणके यहाँ रहते वर्षों बीत गये। उसने मरवणको बता रखा था कि उसके माँ है न बाप, न बहन, न पत्नी। एक दिन मरवण डोलेमें स्नान करने जा रही थी। सुलतान उसका रक्षक था, कि कुछ बनजारोंने डोला रोक लिया और उसे लूटना चाहा। पर सुलतानके होते किसको हिम्मत थी कि डोलेकी ओर हाथ बढ़ाता। उसने बनजारोंको मार-मारकर भगा दिया।

सुल्तानके विदेश निकालेके दिन समाप्त होनेपर आये। निहालदे नित्य अपने पतिकी बाट देखती पर सुल्तान भूल गया था कि उसे लौटना है। एक दिन निहालदे अपने महलकी खिड़कीपर खड़ी निर्मोहीकी बाट देख रही थी कि कुछ बनजारे महलके नीचेसे निकले जो सुल्तानकी वीरताकी चर्चा कर रहे थे। सुल्तानका नाम कानोंमें पड़ते ही निहालदे चौंकी। उसने अपनी सहेली 'ऊदा'के हाथ बनजारोंको बुलाया और सुल्तानके बारेमें पूछा। बनजारोंने पहले तो सुल्तानकी प्रशंसा की और बादमें कहा कि 'वह नरवरगढ़की रानी मरवणके प्रेममें फँस चुका है'। बनजारोंकी बात सुनकर निहालदेके शरीरमें अग्नि-सी लग गई। उसने मरवणके नाम पत्र भेजा जिसमें उस पर अपने पति सुल्तानको प्रेममें फँसाये रखनेका दोष लगाया गया था। पत्र मिलते ही मरवणने सुल्तानको बुलाकर पूछा तो उसने कहा 'हाँ, हाँ मुझे याद आया। मैंने विवाह किया था पर उसे मैं बिल्कुल भूल गया'। मरवणने सुल्तानको बुरा-भला कहा और उसी समय वापस लौटनेको तैयार कर दिया। सुल्तान बहुत-सा धन लेकर केलागढ़की ओर चल दिया।

सुलतान चलता-चलता केलागढ़के निकट पहुँचा और एक बागमें आराम करने लेट गया। थका हुआ तो था ही उसे लेटते ही नींद आ गई पर वह तीजोंका अन्तिम दिन था जब कि निहालदेको अग्नि-प्रवेश कर जाना था। निहालदेने समझ लिया कि अब सुलतान लौटकर नहीं आयगा। उसने अग्नि-प्रवेशकी तैयारी आरम्भ की। अपने गहने उतारकर दान कर दिये। वह सहेलियोंसे मिली। माँ-बापके चरण छूए और चिताकी तैयारीमें लग गई।

भाग्यवश गहने दान करते समय निहालदेकी वह अँगूठी जो सुलतानने निशानीके तौरपर दी थी गिर पड़ी और उसे एक कौएने उठा लिया। कौआ उड़ता-उड़ता उसी वृक्षपर पहुँचा जहाँ सुलतान सोया हुआ था। वृक्षपर बैठते ही कौएने चिल्लानेके लिए जैसे ही मुँह खोला कि अँगूठी

मुँहसे छूटकर सुल्तानकी छातीपर जा गिरी। कौएके चिल्लानेसे सुल्तानकी आँख खुल गई थी। उसने जब अपनी अँगूठी देखी तो वह असमंजसमें पड़ गया। उसकी समझमें न आया कि यह अँगूठी इस कौएको कैसे मिली? बहुत सोचनेपर उसने अनुमान लगाया कि हो-न-हो निहालदेने अपना प्रण पूरा कर दिया। इतना विचार मनमें आना था कि वह घोड़ेपर सवार हवाके वेगसे निहालदेके महलकी ओर भागा। वह ठीक उस समय वहाँ पहुँचा जब कि निहालदेने चितापर बैठकर उसे आग दिखा दी थी। यदि सुल्तान कुछ क्षणकी देरीसे पहुँचता तो स्वर्ण-सी काया जलकर भस्म हो चुकी होती। सुल्तानने पहुँचते ही घोड़ेसे छलाङ्ग लगा दी और निहालदेको चितासे खींच लिया। दोनों प्रेमी एक बार फिर मिले और शोकके स्थानपर चारों ओर प्रसन्नताका साम्राज्य छा गया।

नर सुल्तान केलागढ़में कुछ दिन चैनसे रहा और फिर वहाँसे विदा होकर निहालदे सहित अपने राज्यको लौट आया।

राजा चाँद

बंगाल प्रदेशकी चम्पक नगर नामक राजधानीमें किसी समय राजा चाँद राज्य करते थे। वे धर्मात्मा, प्रजापालक और शिवके भक्त थे। शिवकी तपस्या द्वारा उन्हें शक्ति महामन्त्रकी प्राप्ति हुई, जिससे वे जिसका चाहें दुःख हरण कर सकते थे।

उन्हीं दिनों नागोंकी बहन कश्यपकी पुत्री मनसादेवी राजा चाँदकी शिवभक्ति देखकर प्रसन्न हुई और उसने विचार किया यदि राजा मेरी भी पूजा करे तो क्या ही अच्छा हो? और एक दिन प्रकट होकर मनसा देवीने अपनी इच्छा राजा चाँदपर प्रकट कर दी। राजा चाँद तो पूर्ण शिवभक्त थे। वे कैसे मनसादेवीकी पूजा स्वीकार करते? सो राजा चाँदने साफ़ इनकार कर दिया और मनसादेवी उससे रुष्ट हो गई। किन्तु जब तक राजाके पास शक्ति महामन्त्र था तब तक वह उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती थी, इसलिए उसने सबसे पहले वह मन्त्र छलनेका विचार किया।

मनसादेवी स्त्री रूपमें एक दिन राजा चाँदके बाग़में आ बैठी और रोने लगी। उसी समय राजा जी भी वहाँ घूमते-फिरते आ पहुँचे। स्त्री को यों रोते-बिलखते देख उन्होंने कारण पूछा, तो स्त्री ने कहा—'मनसादेवी हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ी है। मैं नित्य शिवकी पूजा करती हूँ, पर वह अपनी पूजा करवाना चाहती है और जब मैं न मानी तो उसने मेरा पुत्र मार दिया है। मुझे पता चला कि यहाँ के राजा भी शिवभक्त हैं और मनसा देवी उन्हें भी सताना चाहती है, पर शक्ति महामन्त्रके कारण वह उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। सो मैं इसीलिए आई हूँ कि राजा जी यदि कृपाकर मुझे भी वह मंत्र दे दें, तो मनसा देवीके भयसे मुक्त हो सकती हूँ'। राजा चाँदको स्त्रीकी बात सुनकर

मनसादेवी पर बहुत क्रोध आया जो अपने पूजनके लिए लोगोंको तंग कर रही थी और इसी क्रोधमें वे भूल गये कि महामन्त्र किसीको देना भी है अथवा नहीं। दयावश राजा चाँदने वह मन्त्र उस स्त्रीको दे दिया ताकि मनसा देवीसे सुरक्षित रह सके पर वह तो स्वयं मनसा देवी थी। शक्ति महामंत्र पाकर अति प्रसन्न हुई और वहाँसे चली गई।

शक्ति महामंत्र देकर राजा चाँदको कष्ट सहन करना पड़ा। मनसा देवी ने मंत्र हरण करते ही एक-एक कर राजा चाँदके छः पुत्र नष्ट कर दिये। घरमें छः विधवाओंके रुदनसे कुहराम मच गया। राजा चाँद इस कष्टको न सह सके और राज-पाट मंत्रीको सौंपकर तपस्या करनेके विचारसे घरसे चल दिये। जब वे नावमें बैठे जा रहे थे तब मनसादेवीने उस नावको गहरे पानीमें उलट दिया। नावके उलटनेसे लोग डूबने और चिल्लाने लगे। राजा चाँद भी पानीमें डूबते-उतराते बह चले, और इसी दौड़-धूपमें तनके वस्त्र तक उतर गये। जब वे थके-माँदे किनारे पर पहुँचे तो प्रायः नग्न थे। अब वे कहाँ जाएँ क्या करें? कुछ समझ में न आता था। उनकी दृष्टि जो सामने गई तो क्या देखते हैं कि शव जल रहा है और उसका अधजला वस्त्र एक ओर उड़ गया है। राजा चाँद उस वस्त्रको उठाने के लिए लपके और उसीसे शरीरको ढाँपकर आगे बढ़े। वे धीरे-धीरे एक बाग़में पहुँचे और बैठकर आराम करने लगे। राजा चाँदने देखा कि उस स्थानके राजा चन्द्रकेतु जो कभी उनके मित्र थे अपने मन्त्रीके साथ घूमने-फिरनेके लिए उसी ओर चले आ रहे हैं। राजा चाँदको अपनी स्थितिपर बहुत लज्जा प्रतीत हुई, पर क्या करते? इतनेमें राजा चन्द्रकेतु भी वहाँ आ पहुँचे और राजा चाँदको पहचानकर उनसे लिपट गये। राजा चाँदकी इस प्रकारकी दशाका कारण पूछा और सब हाल सुनकर दुःखी हुए और उन्हें साथ लेकर अपने महलमें लौट आये। राजा चन्द्रकेतुने अपने मित्रको स्नान करवाया। अच्छे-अच्छे वस्त्र पहननेको दिये और रसोई तैयार करवाई। जब दोनों मित्र भोजन पर बैठे तब फिर मनसा देवी-

की बात चली। राजा चाँदने विचार किया कि मैं जहाँ जाता हूँ मनसा देवी कष्ट देने वहीं पहुँच जाती है, इसलिए कहीं मेरे कारण वह मेरे मित्रको कष्ट न दे। यह विचार मनमें आते ही वे भोजनसे उठ खड़े हुये। राजा चाँदकी चेष्टासे राजा चन्द्रकेतुको आश्चर्य हुआ। चाँदने मित्रके दिये सब वस्त्र उतार दिये और वहाँसे फिर चल दिये। चन्द्रकेतुके बहुत पूछने पर भी उन्होंने अपने मनकी बात न बताई।

राजा चाँद चलते-चलते एक जंगलमें जा पहुँचे। वहाँ कुछ लकड़हारे लकड़ियाँ काट रहे थे। राजा चाँदने सोचा हमें भी अपने हाथसे कमाकर खाना चाहिए और वे भी लकड़हारोंके साथ लकड़ियाँ चुनने लगे। मनसा देवी राजाका विचार भाँप गई और जब राजाने लकड़ियोंका गट्ठर तैयार कर लिया तब उसने उनका बोझ बढ़ा दिया। राजा चाँदने बहुत यत्न किया पर लकड़ियाँ उठनी थीं, न उठीं। राजा चाँद निराश होकर लकड़ियोंको वहीं छोड़ आगे चल दिये।

राजा चाँदने सोचा घरसे चले थे हरिभजनको और यहाँ आ कर ओटने लगे कपास। यह मनसा देवी यों तप भी न करने देगी। इससे अच्छा अपने राज्यमें ही रहते और यह सोच कर वे फिर अपने राज्यकी ओर लौट पड़े। उन्हें ध्यान आया कि उनके चले आनेके बाद कहीं दबाव दे कर मनसा देवीने उसके राज्यमें अपनी पूजा न आरम्भ करवा दी हो। और वे अपनी राजधानी चम्पक नगरमें पहुँचनेको उतावले हो उठे।

जब वे राजधानीमें पहुँचे तो क्या देखते हैं कि नगर सुनसान-सा हो रहा है। वे सीधे अपने महलमें पहुँचे जहाँ उनकी रानी मेनका विरहके दिन रो-रो कर काट रही थी। बाँदियाँ उसे दिलासा देतीं पर वह अपनी विधवा बहुओंको देख कर अशान्त हो जाती। राजा चाँद जब अपने महलके सामने पहुँचे तो बाँदी उन्हें आया जान भागी रानी मेनकाके पास पहुँची और राजा जीके आनेकी सूचना दी। समाचार सुनते ही रानी भागी हुई बाहर आई और अपने पतिको देखकर बहुत प्रसन्न हुई। रानी

ने उसका स्वागत किया और अपने महलमें ले गईं। इतने दिनोंके वियोग की चर्चा चली। दोनोंने मिल कर अपनी-अपनी व्यथा कह सुनाईं और रानी मेनकाने महाराजको स्नान आदि करवा कर खाना खिला कर आराम करनेके लिए पलंग बिछा दिया। राजा चाँदको लेटते ही नींद आ गई और रानी मेनका बैठी पंखा झलती रही।

अभी राजा चाँदको सोये थोड़ी देर भी न हुई थी कि रानी मेनकाने देखा कि मनसा देवी कमरेमें आई है और वह रानीके पास बैठ गई है। रानीने घबरा कर अपने पतिको पुकारा और जब राजा चाँदकी आँख खुली तो क्या देखता है कि रानीके पास मनसा देवी भी बैठी है। राजा चाँद उसे देखते ही फुफकार उठा। उसने रानी मेनकासे कहा कि इस दुष्टाको अभी चुटिया पकड़ कर महलसे बाहर निकाल दे। राजाकी बात सुनकर पिछले कष्टोंको स्मरण करते हुए रानीने अपने पतिको समझाना चाहा, पर उसने स्पष्ट कह दिया कि 'यह जो चाहे करे, मैं इसका पूजन नहीं कर सकता।' राजा चाँदकी बात सुनकर मनसा देवी बहुत प्रसन्न हुई और उसने कहा—'राजन्! घबराओ नहीं। तुम परीक्षामें सफल रहे। मेरा आशीर्वाद है कि शिवमें तुम्हारी भक्ति अटल रहे। अब तुम आरामसे राज्य करो। मेरे आशीर्वादसे एक वर्ष बाद तुम्हें पुत्ररत्नके दर्शन होंगे।' इतना कह कर मनसा देवी वहाँसे चल दी। मनसा देवीके वचनानुसार एक वर्ष बाद राजा चाँदके घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम लखेन्द्र रखा गया और राजा रानी अपनी प्रजा सहित प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

सेठ ताराचन्द

एक समयकी बात है कि दिल्लीमें सेठ ताराचन्द रहता था। वह बड़ा धर्मात्मा और दानी था। स्थान-स्थानपर उसने क्षेत्र खुलवा रखे थे और कोई भिखारी उसके द्वारसे खाली न लौटता था। उसका व्यापार देश-विदेशमें फैला था और उसका नाम बहुत प्रसिद्ध था।

दिल्लीमें ही एक और सेठ रहता था जिसका नाम था हरिराम। वह प्रकृतिसे ही कंजूस था और कभी एक पैसा किसीको देकर प्रसन्न न होता था। यही कारण था कि उसे कोई न जानता था किन्तु वह ताराचन्द सेठकी टक्करका होते हुए भी प्रसिद्ध न होनेके कारण उससे मन-ही-मन ईर्षा रखता था और रात-दिन यही सोचता था कि सेठ ताराचन्दकी ख्याति कैसे समाप्त की जाय। अन्तमें बहुत सोच-समझकर उसने ताराचन्दके पास आना-जाना आरम्भ कर दिया और धीरे-धीरे उसे सुझाया कि 'दान-दक्षिणा और अपने कारिन्दोंको दी गई बखशीशें बेकार धन लुटाना है। यदि तुम यह सब बन्द कर दो तो तुम्हारे पास अनन्त धन हो।' धीरे-धीरे ताराचन्द पर उसकी बातोंका प्रभाव होने लगा और उसने क्षेत्र बन्द कर दिये। कारिन्दोंको दी जानेवाली बखशीशें बन्द कर दीं। किन्तु इसका प्रभाव हुआ कि कारिन्दोंने ठीक काम करना छोड़ दिया। भाग्यने पलटा खाया और व्यापारमें घाटा पड़ने लगा। नौकर-चाकरोंने धोका दिया। कोठियोंमें अग्नि-काण्ड हुए। विदेशोंसे आनेवाले सामानसे लदे जहाज़ रास्तेमें ही डूब गये और इस प्रकार धीरे-धीरे ताराचन्दको रोटियोंके लाले पड़ गये। ताराचन्द और उसकी पत्नी लीलावतीको रात-दिन चिन्ता रहने लगी। अन्तमें पत्नीने पतिसे कहा। यों सोचमें पड़े रहनेसे कोई लाभ नहीं। किसी प्रकार कहींसे कुछ रुपयेका प्रबन्ध करके कोई छोटा-मोटा धन्धा

आरम्भ करना चाहिए जिससे घरका काम चल सके। आपने सेठ हरिरामकी सीख मानकर धर्म छोड़ा तो हमारी यह दशा हुई। अब आप दोबारा काम आरम्भ करें और धर्ममें ध्यान दें तो फिर सब कुछ हो जायेगा। पर ताराचन्द कहाँसे पैसा लाये? किसीके सामने हाथ पसारनेको मन न होता था। अन्तमें पत्नीने सुझाया कि किसीके पास अपने लड़के चन्द्रगुप्तको गिरवी रखकर कुछ रुपया ले लिया जाय। जब हमारी दशा सुधरेगी तब रुपया लौटाकर लड़केको लौटा लायेंगे। पति-पत्नी इस प्रस्ताव पर सहमत हुए और निश्चय हुआ कि चन्द्रगुप्तको हापुड़के सेठ मनसाराम के पास गिरवी रखकर दो सौ रुपया ले आया जाय।

ताराचन्द निर्णयके अनुसार अपने पुत्रको साथ लेकर हापुड़की ओर चल दिया। माता लीलावती स्नेहवश पुत्रको जाते खड़ी देखती रही। उसके नेत्र छलछला आये पर वह हृदय पर पत्थर धरकर पुत्र-वियोगको सहन कर गई।

जब सेठ मनसारामने अपने मित्रको देखा तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने ताराचन्दका स्वागत किया और आनेका कारण पूछा। ताराचन्दने झिझकते हुए पूरी बात कह सुनायी। मनसारामने कहा—'मित्र! तुमपर विपत्ति आई है इसलिए मैं लड़केको गिरवी रखना पसन्द न करूँगा। आपको जितना रुपया चाहिए वैसे ही ले जायँ। पर जब ताराचन्द अपनी ज़िदपर अड़ा रहा तब मनसारामने अपनी पत्नीसे विचार-विमर्श किया और अन्तमें चन्द्रगुप्तको अपने पास रखकर ताराचन्दको दो सौ रुपया दे दिया।

पिता पुत्रको छोड़कर चलने लगा तो दोनोंके नेत्र छलछला आये। ताराचन्दने अपने बारह वर्षीय पुत्रको समझाया कि आजसे मनसा राम ही तुम्हारे पिता हैं और उनकी पत्नी तुम्हारी माता। कभी समय पलटेगा तो हम फिर इकट्ठे होंगे, नहीं तो तुम जी लगाकर इनके पास रहना और इनकी आज्ञाका पालन करना। ताराचन्द अपने पुत्रको समझाकर चल दिया, किन्तु जब वह चलता-चलता दिल्लीके निकट आया तो उसे यमुना

जो पार करनी थी और उस समय नाव घाटपर कोई दिखायी न दी। तारा-चन्द बिना नावके ही यमुना पार करने लगा। नदीमें पानी आया हुआ था, जब ताराचन्द मजधारमें पहुँचा, तो कमरसे बँधी दो सौ रुपयेकी नेवली खुल कर पानीमें बह गई। ताराचन्दने बहुत हाथ-पाँव मारे पर नेवली हाथ न आई और वह अपने भाग्यको कोसता रोता-पीटता अपने घर आया। जब लीलावतीने पूरी घटना सुनी तो वह भी इस दुःखको सहन न कर सकी, किन्तु क्या करती ? आखिर दोनों रो-धोकर चुप हो गये और ताराचन्द लकड़-हारेका काम करने लगा। जंगलसे लकड़ियाँ ले आता और उन्हें बाजारमें बेच देता। इस प्रकार जो पैसे हाथ आते उनमेंसे एक चौथाई अपना और पत्नीका पेट पालनेमें खर्च करता और तीन चौथाई अतिथि और सन्त-सेवामें लगा देता।

इधर ताराचन्द और उसकी पत्नी जैसे-तैसे अपना काम चला रहे थे, उधर चन्द्रगुप्त सेठ मनसारामके यहाँ रह रहा था। सेठ और उसकी पत्नी चन्द्रगुप्तको अपने पुत्रके समान समझते थे। इसी प्रकार रहते उसे वर्षों बीत गये।

एक दिन सिंहल द्वीपसे सेठ मनसारामके यहाँ रूईकी माँग हुई। सेठने अपने लड़कोंको रूईके जहाज लेकर जानेको कहा, पर इतनी दूर जानेसे दोनों लड़कोंने मनाकर दिया। तब सेठ मनसारामने चन्द्र-गुप्तको बुलाकर सब बात कह सुनायी और सिंहल द्वीप जानेको कहा और चन्द्रगुप्त तैयार हो गया। चलनेकी पूरी तैयारी की गई। जब चलनेका समय आया तब चन्द्रगुप्त सेठानी और सेठके लड़कोंकी बहुओंके पास गया और सिंहलद्वीपसे उन्हें अपने लिए कुछ मंगानेको कहा। सेठानीने एक लाल मँगवाया और बहुओंने सच्चे मोतियोंकी माला। चन्द्रगुप्त वहाँसे चल दिया और सिंहलद्वीप पहुँचा। व्यापारमें खूब लाभ हुआ। जब वह चलने लगा तो उसे सेठानी और बहुओंकी चीजें याद आईं। उसने बहुत यत्न किया पर वे चीजें उसे न मिल सकीं।

वह इसी चिन्तामें घूमता-फिरता एक ओरको चल दिया। आगे क्या देखता है कि एक बारात ठहरी हुई है। वह जब बारातके निकटसे होकर निकलने लगा तो बारातियोंने उसे बुलाया और कहा—'भाई! तुम हमारा एक काम निकाल दो तो हम तुम्हें खूब इनाम दें'। चन्द्रगुप्तने काम पूछा तो बाराती बोले—'हम यहाँके नगरसेठके घर बारात लेकर आये हैं। पर हमारा लड़का बदसूरत है। हमें भय है कि कहीं नगर-सेठ लड़केको देखकर विवाहसे इनकार न कर दे। यदि तुम विवाह-संस्कार पर वर बनकर चल सको तो हम तुम्हें खूब इनाम देंगे'। चन्द्रगुप्तने उनकी बात मान ली और उसे वरके वस्त्र पहनाये गये। हाथोंपर मेंहदी रचा दी गई। आँखोंमें सुरमा लगा दिया गया और तब बारात आगे बढ़ी।

लड़की वालोंने चन्द्रगुप्तको वर रूपमें देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और हँसी-खुशीसे विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। छन्दोंके समय सासने लाल भेंट किया और सालियोंने सच्चे मोतियोंकी मालाएँ दीं, और तब चन्द्रगुप्त बारातके साथ जनवासेमें लौट आया। बारातियोंने प्रसन्न होकर वह लाल और मोतियोंकी मालाएँ चन्द्रगुप्तको भेंटकर दीं और उसे विदा किया।

चन्द्रगुप्त अगले दिन सवेरे ही उन लाल और मोतियोंकी मालाओंको लेकर नगर सेठकी गलीमें बेचने निकला। जब नगर सेठ और उसके परिवारने वे लाल और मालाएँ देखीं तो झट पहचान लीं और चन्द्रगुप्तको भी पहचानकर अपने घर ले गये। नगर सेठने चन्द्रगुप्तसे पूरी कहानी सुन ली और बारातमें कहला भेजा कि वरको घर पर भेज दें। तब लड़केके पिताने अपने पुत्रको तैयार करके उसके कुछ साथियां सहित भेज दिया। जब नगर सेठने यह धोका देखा तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसी समय लड़के और लड़केके पिताको बारात लौटा ले जानेको कहा और अन्तमें बारातको खाली हाथों लौटना पड़ा।

चन्द्रगुप्त कुछ दिनों अपनी सुसरालमें रहा। उसके बाद वापस हापुड़ लौटनेको तैयार हुआ। उसने अपने जहाजोंमें माल भरा और श्वसुरसे

आज्ञा लेकर लौट पड़ा। श्वसुरने बहुत-सा धन और सामान देकर अपनी पुत्री धर्म मालकीको चन्द्रगुप्तके साथ विदा किया। रास्तेमें धर्म मालकीने अपने पतिसे उसका परिचय पूछा और चन्द्रगुप्तने आदिसे अन्त तक अपनी पूरी कहानी सुना दी।

चन्द्रगुप्तके जहाज चलते-चलते एक टापूमें चहुँचे। चन्द्रगुप्तके मनमें एक काँटा-सा खटकता रहता था कि जब मैं धर्ममालकीको लेकर हापुड़ जाऊँगा तब सेठजी अपने मनमें न जाने क्या समझेंगे? शायद वे यह समझें कि व्यापारमें बहुत लाभ हुआ होगा और उसीमें से रुपया खर्च करके मैं यह विवाह कर लाया हूँ और यदि वे यह समझें तो बहुत बुरा होगा। वे मुझे बेईमान समझेंगे। चन्द्रगुप्त हर समय इसी चिन्तामें रहता। जब वे टापूमें ठहरे तो चन्द्रगुप्त रात्रिके समय धर्ममालकीको सोते छोड़ अपने जहाज लेकर चल दिया और हापुड़ आ पहुँचा। उसने सेठानी को लाल भेंट किया और सेठकी बहुओंको सच्चे मोतियोंकी मालाएँ दीं और अपने काममें लग गया। सेठ मनसाराम चन्द्रगुप्तके कामसे बहुत प्रसन्न हुआ।

धर्ममालकी अगले दिन सवेरे जब उठी तो न वहाँ चन्द्रगुप्त दिखायी पड़ा, न कोई जहाज। वह समझ गई कि मुझे अकेले इस टापूमें छोड़कर वह निर्दयी चला गया है। वह रोयी-पीटी पर उस जंगलमें कौन सुनने वाला था। उसे भय था कि कहीं कोई देख ले और आभूषण और स्त्रीके लालचमें उसका सतीत्व नष्ट करने या प्राण लेने पर उतारू हो जाय। इसी भयसे उसने अपने केशोंका जूड़ा बनाया और कफनी पहनकर मुँहपर भभूत रमा ली और साधुका वेश बनाकर समयकी प्रतीक्षा करने लगी। कुछ दिनों बाद उसे इधर आनेवाला एक जहाज़ मिला और वह उसमें बैठकर चली आई। पर अपने पतिको कहाँ खोजे? यह उसकी समझमें न आया।

चन्द्रगुप्तसे उसने सुना था कि उसके माता-पिता दिल्लीके रहनेवाले हैं जो किसी समय देश-विदेशमें प्रसिद्ध थे, पर आजकल तंगीके दिन काट रहे हैं, सो धर्ममालकी दिल्लीकी ओर चल दी और वहाँ पहुँच कर यमुनाके किनारे धूनी लगाकर घोर तप करने लगी। उसके तप की ख्याति शीघ्र ही नगर भरमें फैल गई और नगरके सेठ-साहूकार और अन्य लोग दर्शनोंके लिए आने लगे। धर्ममालकी आनेवालोंके नाम पूछती और चुप हो जाती। उसे अपने श्वसुरके दर्शन होने थे न हुए।

एक दिन धर्ममालकी ध्यानमें बैठी थी कि एक व्यक्तिने आकर प्रणाम किया। धर्ममालकीने नाम पूछा तो आनेवालेने अपना नाम ताराचन्द बताया और परिचित नाम सुनकर उसके कान खड़े हुए और उसने पूरा परिचय प्राप्त करना चाहा। ताराचन्दने आरम्भसे अन्त तक सब घटना कह सुनायी जिसे सुन कर धर्ममालकीको विश्वास हो गया कि ये ही मेरे श्वसुर हैं। उसने ताराचन्दको दिलासा दिलाया और कहा 'आपके दिन पलट चुके हैं। आपने धर्मका त्याग करके बहुत कष्ट उठायें हैं अब जाओ अपने लड़केको छुड़ा लाओ।' इतना कहते-कहते धर्ममालकीने धुनीकी राखमेंसे एक आभूषण निकाल कर ताराचन्दके हाथमें थमा दिया। ताराचन्द साधुके इस व्यवहारसे बहुत चकित हुआ पर धर्ममालकीने कहा—'आप घबराइए नहीं। इसे बेच कर अपने लड़केको छुड़ा लाइए।' ताराचन्द आभूषण लेकर चला आया और उसे बेच कर सेठ मनसारामके पास पहुँचा। अपने मित्रका हिसाब करके ताराचन्द अपने पुत्र चन्द्रगुप्तको छुड़ा लाया। घर पहुँचने पर माँ-बेटा गले मिलकर रोये और तब ताराचन्दने साधुकी कृपाकी बात कही। चन्द्रगुप्त साधुकी कृपासे बहुत प्रभावित हुआ और उसने अपने पितासे कहा कि हमें उस साधुका एक दिन भोजन अपने घर करना चाहिए और साधुको निमंत्रण दे दिया गया।

अगले दिन भोजन के समय धर्ममालकी ताराचन्दके साथ उनके घर पहुँची। चन्द्रगुप्त और उसकी माताने साधुका बहुत सत्कार किया और

ऊँचे आसन पर विठाया। भोजनका समय हुआ तो साधुने कहा—'अभी स्नान करना है इसलिए पानी कमरेमें रख दीजिए ताकि स्नान करके ध्यान किया जा सके। तब कहीं भोजन ग्रहण किया जा सकता है।' साधुकी बात सुनकर चन्द्रगुप्त बड़ी श्रद्धाके साथ पानी लाया और एक कमरेमें रख दिया। धर्ममालकीने किवाड़ बन्द कर स्नान किया और कफनीके भीतर छिपे अपने वस्त्र और अलंकार पहनी और थोड़ी देर बाद घूँघट निकाले कमरेसे बाहर आई। घरवाले स्त्रीको देख कर आश्चर्यचकित रह गये। तभी धर्ममालकीने अपनी सास और श्वसुरके चरण छूई और तब चन्द्रगुप्त द्वारा अपने छोड़े जाने और वहाँसे यहाँ तक पहुँचनेकी सब घटना कह सुनाई। चन्द्रगुप्त बहुत लज्जित हुआ और उसने धर्ममालकीसे क्षमा माँगी। धर्ममालकीने अपने आभूषण उतार कर श्वसुरके चरणोंमें रख दिया ताकि उनको बेच कर फिर व्यापार आरम्भ किया जा सके और कुछ ही दिनोंमें ताराचन्द फिर सेठ ताराचन्द बन गये।

शीरीं फ़रहाद

पुराने समयकी बात है कि फ़ारस देशमें खुसरो नामका बादशाह राज्य करता था। उसकी प्रजा हर प्रकारसे सुखी थी और खुसरोके न्याय-नीतिकी प्रशंसा करती थी। एक दिन उसके दरबारमें एक व्यापारी आया जिसके पास दूर-दूर देशोंकी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ थीं। खुसरो बड़े ध्यानसे उन वस्तुओंको देख रहा था कि उसकी दृष्टि एक चित्रपर पड़ी, और वहीं गड़ गई। बादशाहने चित्र हाथमें लेकर उसका मूल्य और उस व्यक्तिका पता पूछा—जिसका वह चित्र था। व्यापारीने मूल्य बता दिया और कहा—'यह अमनकी शाहज़ादी शीरींका चित्र है।' खुसरोने चित्र मोल ले लिया और दिन-रात उस चित्रको देखनेमें लग गया।

राज्यके काममें बाधा पड़ते देख मन्त्रीने उन्हें समझाया पर खुसरो बोला—'मन्त्री! मैं अमन जाऊँगा और तब तक नहीं लौटूँगा जब तक वहाँकी शाहज़ादी शीरींको न पा लूँगा'। पहले तो मन्त्रीने बादशाहको समझाया पर जब देखा कि वह माननेवाला नहीं, तब मन्त्रीने कहा—'बादशाह सलामत! जब तक हम किसी कामको कर सकते हैं तब तक आपको कष्ट उठानेकी क्या ज़रूरत है? आप आरामसे राज-काज संभालिए। शीरींको लेने मैं जाऊँगा'। बादशाहकी समझमें बात आ गई और मन्त्रीको अमन जानेकी आज्ञा दे दी।

मन्त्रीने व्यापारीका रूप बनाया और खुसरोका एक चित्र और अनेक चित्रोंके साथ रखकर वह अमनकी ओर चल दिया। मन्त्रीने अमनमें पहुँचकर शीरींके महलके नीचे आवाज़ लगायी। शीरींने किसी नये व्यापारीको आया जान महलमें मन्त्रीको बुला भेजा। मंत्री अपना सामान एक-एककर शीरींको दिखाने लगा और धीरे-धीरे खुसरोके चित्रकी एक झलक दिखा कर उसे छुपानेका यत्न करने लगा। शीरींने चित्र देखा तो उसे फिर

देखनेकी हठ की। मंत्रीने बहाना किया 'यह चित्र तो किसी शाहज़ादीने मँगाया है इसलिए बिक न सकेगा'। शीरींकी उत्सुकता उस चित्रकी ओर और बढ़ी। उसने वह चित्र हठकरके देखनेके लिये माँग लिया। चित्रको देखते ही शीरीं उसपर मोहित हो गई। उसने उस व्यक्तिका परिचय पूछा तो मन्त्रीने बता दिया कि 'यह चित्र फ़ारसके बादशाहका है'। शीरींने वह चित्र खरीद लिया और फ़ारसके बादशाहसे मिलनेकी मनमें ठानी।

शीरींने अपनी कुछ सहेलियोंको साथ लिया और बादशाहसे मिलने फ़ारसकी ओर चल दी। मन्त्रीने खुसरोको सूचना दी कि 'शीरीं आपसे मिलने आ रही है'। जब शीरीं फ़ारसके राज्यमें पहुँच गई तब एक दिन खुसरो शिकारके बहाने घोड़ेपर सवार उसी ओर जा निकला, जिधर शीरीं अपना डेरा डाले पड़ी थी। दोनोंकी भेंट हुई, और परस्पर एक दूसरेको देख मोहित हो गये। खुसरोने विवाहका प्रस्ताव रखा, पर शीरींने कहा—'मेरी एक प्रतिज्ञा है। आप उसे पूरी कर दें तब मुझे विवाह करनेमें कोई संकोच न होगा'। खुसरोने प्रतिज्ञा पूछी, तो शीरींने कहा—'हमारे पहाड़ी देशमें नहरका कोई प्रबन्ध नहीं है। यदि आप एक नहर बनवा सकें तो मैं विवाह कर लूँगी।' शीरीं जिस स्थान पर नहर चाहती थी वहाँ नहर बनाना कोई हँसी-खेल न था इसलिए उसकी शर्त सुनकर खुसरो का मुँह सूख गया, पर जब मंत्रीको पता चला तो उसने शर्त स्वीकार कर ली। शीरीं अपने राज्यमें वापस लौट आई।

मंत्रीने अपने मित्र फरहादको बुलाया और अमन राज्यमें नहर बनानेका काम उसे सौंपा। फरहाद फारससे चलकर अमन पहुँचा और शीरींसे मिला। शीरींको देखते ही वह अपनी सुध-बुध खोने लगा। शीरींने उसे बताया कि अमुक स्थानसे लेकर अमुक स्थान तक इतनी लम्बी और इतनी चौड़ी नहर चाहिए। फरहाद आज्ञा शिरोधार्य कर चला आया और अपने काममें जुट गया।

शीरींको देखनेके बादसे फ़रहादकी आँखोंके सामने हर समय शीरीं घूमने लगी। वह पहाड़ पर छैनी और हथौड़ीसे चोट लगाता और उसके मुँहसे निकलता 'शीरीं'। वह खाना-पीना, नहाना-धोना सब भूल गया। उसे केवल एक बात याद थी 'शीरींके लिए नहर बनाना',। अन्तमें रात-दिन परिश्रम करके फ़रहादने नहर तैयार कर ली। जब शीरींको नहरके तैयार होनेका पता चला तो वह अपनी सहेलियोंके साथ उसे देखने पहुँची। नहरको देख कर उसका हृदय बल्लियां उछलने लगा। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई इसलिए उसे विश्वास हुआ कि अब प्राणप्यारेसे अवश्य भेंट होगी। शीरींने प्रसन्नतावश अपने कानोंके कीमती झुमके उतार कर फ़रहादके हाथ पर धर दिये। फ़रहादने उन झुमकोंको छातीसे लगाया और नहरमें बहा दिया। फ़रहादके इस व्यवहारसे शीरींको बहुत दुःख हुआ। उसने इसे अपमान समझा और फ़रहादको बुरा-भला कहा। फ़रहादने शान्तिसे उसके वचन सुने और अन्तमें कहा—'आप मुझे इनाम देना चाहती हैं, पर मैं तो केवल आपको चाहता हूँ और आपकी प्रसन्नताके लिए दिन-रात परिश्रम कर मैंने यह नहर बनायी है।' फ़रहादकी बातसे शीरींका पारा सातवें आकाश पर जा पहुँचा। उसने फ़रहादको लताड़ा और दण्ड दिये जानेका भय दिखाया पर फ़रहाद निर्भय खड़ा रहा और अपने प्रेमके बदले हर प्रकारका दण्ड सहन करनेको तैयार रहा। शीरीं क्रोधमें भरी वापस लौट आई और फ़रहाद पागलोंके समान 'शीरीं, शीरीं' चिल्लाता जंगलों और पहाड़ोंकी खाक छानता रहा। उसे रास्तेमें जंगली पशु मिलते तो वह उनसे शीरींके बारेमें बातें करता। वृक्षोंको अपनी प्रियाके बारेमें पूछता और ये सब घटनाएँ शीरींके कानों तक बराबर पहुँचतीं। अन्तमें शीरींका हृदय पिघला। वह मन-ही-मन फ़रहादसे प्रेम करने लगी पर अपने हृदयकी बात किसी पर प्रगट न करती।

उधर बादशाह खुसरोको फ़रहादके प्रेम और पागलपनके बारेमें पता चला तो उसने अपने दूत भेजे ताकि वे फ़रहादको लेकर दरबारमें उपस्थित

हों। एक दूत फ़रहादको खोजता वहाँ पहुँच गया, जहाँ वह खड़ा वृक्षोंसे बातें कर रहा था। दूतने आगे बढ़ कर कहा—'फ़रहाद! तुझे शीरींने याद किया है।' दूतकी बात सुन कर फ़रहाद खिल उठा। वह दूतके पीछे हो लिया और खुसरोके सामने जा पहुँचा।

फ़रहादको देखते ही खुसरोका हाथ तलवार पर जा पहुँचा। वह चाहता ही था कि शीरींको चाहनेवाले फ़रहादका सिर धड़से अलग कर दे कि उसके मंत्रीने हाथ पकड़ लिया। मंत्रीने कहा—'बादशाह सलामत! प्रजा पर यों हाथ उठाना उचित न होगा और फिर जो गुड़ दिये मर जाय उसे विष देनेकी क्या ज़रूरत?' बादशाहने मंत्रीकी बात पर कान धरा और उसे समाप्त करनेका उपाय पूछा। मंत्रीने कहा—'आप इसे कहिए कि पर्वत पर एक सड़क बना दे जो बिल्कुल सीधी हो। आप समझते हैं कि पर्वत पर सीधी सड़क बनाना असम्भव है। यह सड़क बना दे तो हम शीरीं इसे सौंप देंगे। यदि न बना सके तो इसे उसका नाम ज़ुबान पर न लाना होगा।' बादशाहको मंत्रीकी सलाह पसन्द आई और फ़रहादको आज्ञा दी, कि वह अमनके पर्वत पर एक सीधी सड़क बना दे, ताकि शीरींको पर्वत पर घूमने-फिरनेमें कठिनाई न हो। यदि वह सड़क बना देगा, तो शीरीं उसे सौंप दी जायगी। फ़रहादने इस असम्भव कामकी हाँ कर ली।

फ़रहाद अमनमें वापस लौट आया, और सड़क बनाने पर जुट गया। वह छैनी पर्वतकी चट्टान पर धर कर हथौड़ेकी चोट लगाता और चिल्लाता 'हाय शीरीं!' उसने एक पत्थरको काट कर शीरींकी मूर्ति बनायी। वह उसीको वास्तविक शीरीं समझ कर उससे प्यार करता और उसीके घूमने-फिरनेके लिए बिना आराम किये सड़क बनानेमें जुटा रहता। जब सड़क बननेका शीरींको पता चला तो वह फ़रहादको देखने आई। फ़रहादने अपनी प्रियतमाको देखा और प्रसन्न हो गया। शीरींने अपनी मूर्तिसे वास्तविक प्रेम करनेवाले फ़रहादको देखा और फ़रहादके चरणोंमें आत्म-

समर्पण कर दिया। थोड़ी देर वहाँ ठहर कर शीरीं लौट आई और फ़रहाद अपने काममें दुगुनी शक्तिसे लग गया।

सड़कके बन जानेका जब खुसरोको पता चला तो उसे बहुत दुःख हुआ। क्योंकि सड़क बन जाने पर उसे अपने वचनके अनुसार शीरीं फ़रहादको सौंप देनी पड़ेगी। इसलिए उसने अपने मंत्रीसे फिर विचार किया। मंत्रीने एक दूतीको बुलाया और उसे समझाया कि वह रोती हुई फ़रहादके पास जाय और उसे यह कहे कि 'शीरीं अल्लाहको प्यारी हुई।' दूती आज्ञा मान कर वहाँसे चल दी और रोती-धोती वहाँ पहुँची जहाँ फ़रहाद काम कर रहा था। फ़रहादने जब एक स्त्रीको रोते देखा तो रोनेका कारण पूछा। दूतीने कहा—'क्या बताऊँ? जिस पर तू जान छिड़कता है वह आज एक दम अल्लाहको प्यारी हुई।' फ़रहादने जब दूतीके मुँहसे यह बात सुनी तो हथौड़ा हाथसे छूट गया। एक क्षण वह हतप्रभ-सा खड़ा रहा और फिर सहसा उसमें चेतना आई। उसने हथौड़ा उठा लिया और 'शीरीं' कहते हुए पूरे वेगसे अपने सिर पर दे मारा। पत्थरोंको काटनेवाले हथौड़ेकी चोट पड़ते ही फ़रहादका सिर फट गया। रक्तका फव्वारा फूट पड़ा, और वह अचेत होकर गिर पड़ा। जब इस घटनाका शीरींको पता चला तो वह फ़रहादको देखने दौड़ी आई। फ़रहादके सिरसे निकला रक्त दूर तक फैल गया था और फ़रहादके प्राणपखेरु उड़ चुके थे। अपने प्रियतमकी यह स्थिति शीरींसे न देखी गई! उसका हृदय फट गया। वह 'हाय फ़रहाद!' कहती कुररीके समान चिल्लाती फ़रहादके शव पर गिर पड़ी और एक बार जो गिरी तो फिर कभी न उठ सकी।

लोगोंने शीरीं और फ़रहादको एक ही क़ब्रमें दफ़ना दिया। जो दो व्यक्ति इस लोकमें न मिल सके, वे सदा-सदाके लिए एक हो चुके थे। उनकी आत्मा अब शायद अधिक सन्तुष्ट थी।

शाही लकड़हारा

पुराने समयकी बात कही जाती है, कि जोधपुरमें महाराज जोधनाथ राज्य करते थे। उनकी स्त्रीका नाम रूपाणी था, जो अतिसुन्दरी और पतिव्रता थी। महाराज जोधसिंहका अपनी प्रजापर इतना प्रभाव था, कि यदि वे दिनको रात कहें तो किसीकी हिम्मत न थी, कि पलटकर कह सके कि नहीं यह रात नहीं दिन है।

महाराज प्रजापर अपने प्रभावसे परिचित थे। एक दिन वे अपने महलमें रूपाणीके साथ बैठे थे। बातों-बातों में प्रजाकी बात चली, और महाराजने अपने प्रभावकी चर्चा महारानीसे की। महारानीको सुनकर आश्चर्य हुआ, और खेद भी कि प्रजा महाराजको प्रसन्न करनेके लिए कैसे झूठ बोल देती है? रूपाणीको विश्वास न हुआ और दुर्भाग्यवश वह कह बैठी 'महाराज! मैं इस बातको कैसे मानूँ कि राज्यभरमें एक भी व्यक्ति ऐसा न होगा जो सत्य बात कह सके'। महाराजने परीक्षाका अवसर दिया किन्तु साथ ही शर्त लगा दी कि 'यदि मेरी बात सत्य हुई तो तुम्हें बारह वर्ष वनोंमें रहना होगा'। रूपाणी मान गई।

परीक्षा हुई। एक-एक कर सब लोगोंने महाराजकी हाँ-में-हाँ मिलायी। एक भी व्यक्ति ऐसा न मिला जो सत्य बात कह सके और रूपाणीके भाग्यने पलटा खाया। महलमें रहनेवालीके लिए वनमें रहनेका अवसर आया। महाराजने अपनी प्रतिज्ञा दोहरायी। रूपाणी रोयी-धोई और महाराजके पाँव पकड़कर गिड़गिड़ाई। पर स्वभावसे दृढ़ महाराज जोधसिंह न पसीजे और रूपाणीको वनका रास्ता पकड़ना पड़ा।

भाग्यवश महाराजके कोई सन्तान न थी और रूपाणी उन दिनों गर्भवती थी। रूपाणी चलती-चलती वनमें पहुँची। वह थकी-माँदी आश्रय खोज

रही थी, कि उसे एक कुटिया दिखायी पड़ी। वह उसी ओर बढ़ चली। कुटियाके द्वारपर पहुँचकर उसे एक महात्माके दर्शन हुए। उन्होंने घोर जंगलमें उसके आनेका कारण पूछा और रूपाणीने रोते-रोते सब घटना कह सुनायी। महात्माने रूपाणीको धैर्य दिलाया, और धर्मकी पुत्री मानकर उसे अपने पास रख लिया। वनमें भी रूपाणी आरामसे रहने लगी।

कुछ समय बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका नाम वीरेन्द्र रखा गया। वीरेन्द्र धीरे-धीरे कुटियामें रहकर बढ़ने लगा, पर महात्माका समय निकट आ चुका था। माँ-बेटेको रोते-बिलखते छोड़ वह स्वर्ग सिधारा. और रूपाणीपर फिर एक बार विपत्तियोंका पर्वत टूट पड़ा। अब तक दोनोंके भरण-पोषणका भार महात्मा पर था अब रूपाणीपर आ पड़ा। वीरेन्द्र अभी बालक था। रूपाणीने जंगलसे लकड़ियाँ काटी और पासके नगर माधोपुरमें बेचने चली। उसका रूप देखकर मुहल्ले की स्त्रियाँ एकत्र हो गईं। रूपाणीने संक्षेपमें आत्मकथा सुनायी, जिससे दयावश स्त्रियोंने नित्य लकड़ियाँ मोल लेनेका वचन दिया। अब रूपाणी नित्य जंगलसे लकड़ियाँ काट लाती, और एक ही मुहल्लेमें बेच जाती।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये। वीरेन्द्रके सिरपर माताका हाथ था इसलिए उसका अवसर प्रायः खेल-कूदमें बीतता। पर अभी वह युवा भी न होने पाया था, कि रूपाणीको ज्वरने आ घेरा और वह चल बसी। अन्तिम समय महाराज जोधसिंहकी विवाहके समय दी हुई अँगूठी वह अपने पुत्रको दे गई। माताकी मृत्युसे वीरेन्द्र अनाथ हो गया। उसके लिए संसार अँधेरा हो गया, पर उसने हिम्मत न हारी। माताका दाह-संस्कार करनेके बाद वह कुल्हाड़ी लेकर जंगलके भीतर तक चला गया, और सुन्दर-सुन्दर लकड़ियाँ काटकर बाँध लाया। वह उन लकड़ियोंको लेकर माधोपुरके बाजारमें बेचने चला। नगरमें घुसते ही उसे वहाँके एक सेठ मिले। सेठने लकड़ियोंको देखते ही पूछा—'इन लकड़ियोंके क्या दाम लेगा?' वीरेन्द्र जो बादमें शाही लकड़हारेके नामसे प्रसिद्ध हुआ, मोल-तोल

करना न जानता था। उसे तो पेटकी अग्नि शान्त करनेसे प्रयोजन था। और सेठजीने पेटभर रोटियोंपर वह गठड़ी अपने यहाँ गिरवा ली और उससे कहा—'नित्य एक भार ले आया कर और पेटभर भोजनकर जाया कर'। वीरेन्द्र पेटकी चिन्तासे निश्चिन्त हुआ और नित्य एक भार सेठके घर पहुँचाने लगा।

उधर माधोपुरके महाराज रायसिंहके दो कन्याएँ थीं वीणा और वेला। वीणाकी माताका देहान्त हो चुका था और वेलाकी माँ जीवित थी। दोनों लड़कियोंके स्वभावमें दिन-रातका अन्तर था। वीणा गम्भीर थी और सदा काम और पढ़ने-लिखनेमें ध्यान देती थी। जब कि वेला चंचल और क्रीडा-प्रिय थी। प्रायः खेल-खूदके लिए वेला वीणाको तंग करती पर वह खेलनेमें मन न लगाती। धीरे-धीरे दोनों लड़की युवती हुईं। महाराजको विवाहकी चिन्ता लगी। उस समयके दो प्रसिद्ध डाकू जालिमसिंह और विजयसिंह थे। उन्हें जब पता चला तो वे राजकुमार-का वेश बनाकर माधोपुरके एक बाग़में आकर ठहरे और महाराजको कहला भेजा कि 'हम अमुक राजाके राजकुमार हैं और आपकी कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा लेकर आये हैं।' महाराजने सूचना पाकर अपनी रानीसे विचार-विमर्श किया। भला रानी ऐसे अवसरको हाथसे क्यों जाने देती! उसने कह दिया कि 'पहले राजकुमारको पसन्द कर लिया जाय। यदि वे पसन्द हों तो विवाह करनेमें क्या हर्ज़ है?' और रानीके कहे अनुसार वेलाकी सहेलियाँ गाती-बजाती राजकुमारोंको देखने बाग़में पहुँचीं। उनके साथ वीणा और वेला भी थीं। राजकुमारोंको पसन्द किया गया। वेला उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुई पर वीणाको बात नहीं जची। उसने रास्तेमें वेलासे कह दिया 'जीजी! मुझे तो ये राजकुमार नहीं, लफंगे प्रतीत होते हैं'। वेलाने इस बातका बुरा माना और अपनी माँको जा कहा, कि वीणा उन्हें लफंगा बताती है। रानीने महाराजके कान भरे और महाराजने वीणाको बुलाकर पूछा और उसने निःसंकोच अपना

मत प्रकट कर दिया। महाराजको बहुत क्रोध आया और कहा—'वीणा! बेलाका विवाह तो राजकुमारसे ही होगा, पर तेरा विवाह किसी कंगालसे किया जायगा'। वीणा ने पितासे कह दिया कि 'जो मेरे भाग्यमें लिखा है वही होगा। इसके अतिरिक्त और कोई कुछ नहीं कर सकता'। पिता पुत्री की बात सुनकर उछल पड़े और आज्ञा दी, कि 'अभी किसी कंगालको खोज-कर लाया जाय'। दूत वहाँसे चले और भाग्यसे उन्हें लकड़ी काटता वीरेन्द्र दिखायी पड़ा। दूत वीरेन्द्रको बलात् अपने साथ लेकर महाराजके सामने पहुँचे। उस कंगालको देखकर महाराजने वीणाका विवाह उसके साथ कर दिया और बेलाका राजकुमार रूपधारी डाकूसे।

वीरेन्द्रने वीणाको समझाया कि 'मेरे पास न रहनेको मकान है, न सिर ढकनेको छाया। खाने-पीनेका भी मेरे पास कोई प्रबन्ध नहीं है।' पर वीणा न मानी और अपने पतिके साथ कुटिया पर आ पहुँची। कुटिया पर पहुँच कर वीणाने वीरेन्द्रकी बातको सत्य पाया, पर वह घबड़ायी नहीं।

दूसरे दिन वीरेन्द्र लकड़ियाँ काट कर लाया तो वीणाने उन लकड़ियोंको पहचान कर पूछा 'आप इन लकड़ियोंको क्या करते हैं?' वीरेन्द्रने कहा—'एक सेठके घर छोड़ आता हूँ, और आते हुए भोजन पा आता हूँ।' वीणाने प्रश्न किया 'आपको ये लकड़ियाँ उसके घर डालते कितने दिन हो गये?' वीरेन्द्रने कहा—'छः वर्ष।' वीणाने कहा—'आज आप ये लकड़ियाँ न ले जायें, अपितु आप जाकर सेठसे यह कहें कि मेरा आज तकका हिसाब कर दें।' वीरेन्द्रको वीणाकी बात पर आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'मेरा हिसाब कैसा?' मैं लकड़ियाँ छोड़ आता हूँ और भोजन कर आता हूँ।' वीणाने बताया कि 'ये तो चन्दनकी लकड़ियाँ हैं। इनका मूल्य दो रोटी मात्र नहीं।' वीरेन्द्रकी आँखें खुलीं और वह वीणाके कहे अनुसार सेठके पास पहुँचा, और अपना हिसाब माँगा। थोड़ा वाद-विवाद हुआ, पर बादमें सेठने वीरेन्द्रको महाराजका दामाद समझ कर हिसाब कर दिया

जिससे हजारों रुपया उसके हाथ लगा। अब वीणा और वीरेन्द्र आरामसे जीवन विताने लगे।

एक बार दोनोंने सोचा कि क्यों न तीर्थ यात्राकी जाय। और वे कुछ रुपया अपने साथ लेकर यात्रा पर चल दिये। तीर्थयात्रा करते ये गंगाके किनारे पहुँचे। इन्हें गंगाको पार करना था पर दुर्भाग्यवश उस समय कोई नाव वहाँ न थी। वीरेन्द्रने वीणाको किनारे पर बिठाया और स्वयं नाव लेने तैर कर गंगाके पार चला गया। वीरेन्द्रके जाते ही उधरसे डाकुओंका निकलना हुआ और एक सुन्दरीको गंगा किनारे बैठे देख वे वहीं ठहर गये और बलात् उसे वहाँसे उठा कर ले गये। वीरेन्द्र जब लौटकर आया, तो अपनी प्रियाको न पाकर बहुत दुःखी हुआ। वह महाराज जोधनाथके दरबारमें पहुँचा, और अपनी सहायताके लिये प्रार्थना की। वीरेन्द्रके हाथकी अँगूठी पर महाराजकी दृष्टि गई, तो झट पहचान ली। महाराजने पूछा—'यह अँगूठी तुम्हें कहाँसे मिली?' वीरेन्द्रने अपनी माताकी चर्चा की। महाराज-को यह समझते देर न लगी कि प्रार्थी ही उसके राज्यका उत्तराधिकारी है। उसने आगे बढ़ कर वीरेन्द्रको गले लगा लिया और सम्मानके साथ अपने पास बिठाया। वीरेन्द्रने वीणाके गुम होनेकी घटना कह सुनायी, और महाराजने तत्काल अपनी सेनाकी एक टुकड़ी खोजके लिए भेज दी। डाकुओंका सेनाके साथ सामना हुआ और डाकू मारे गये। उनके मारे जाने पर उनके अधिकारसे वीणा और वेला दोनों बहनें मिलीं। महाराज जोधनाथने माधोपुर महाराज रायसिंहके पास सूचना भेजी और रायसिंहने जोधपुर पहुँच कर अपनी दोनों लड़कियोंको पहचान लिया, और वे गद्‌गद हो गये। वीणाको देखकर महाराज लज्जित हुए, क्योंकि अब उन्हें पता चला कि वीणाके कहनेके अनुसार वे वास्तवमें राजकुमार न थे, अपितु डाकू और लफंगे ही थे। और जिसे कष्ट पहुँचानेके लिए महाराजने एक लकड़हारेसे उसका विवाह किया था, वास्तवमें वह लकड़हारा न था

अपितु राजकुमार था। महाराज रायसिंहने वीणासे क्षमा माँगी, और अपने कृत्य पर खेद प्रकट किया। महाराज जोधनाथने वेलाका विवाह अपने मंत्रीके लड़केके साथ करवा दिया और तब दोनों बहनें आनन्दसे रहने लगीं। वीरेन्द्रको राज्यका उत्तराधिकारी घोषित किया गया।

महकदे जानी चोर

एक समय नरवर गढ़में महाराज सुल्तान राज्य करते थे। वे वीर और प्रजापालक थे। उनकी धर्मबहनका नाम मरवण था। मरवणके पुत्रके विवाहका समय आया तब वह अपने भाईके घर भात न्योतने आई। भाईने बहुत खुशी मनायी और भात लेकर बहनके घर जानेकी ठाट-बाटसे तैयारी की। सुल्तानका पगड़ी बदल मित्र था अपने समयका प्रसिद्ध चोर जानी, जो अपने मित्रके समान वीर होनेके साथ-साथ छल-कपटमें भी बहुत चतुर था। जब बहनके घर भात लेकर चलनेका समय आया तब सुल्तानने अपने मित्र जानी चोरको भी साथ ले लिया।

दोनों मित्र भातका सामान और अपने कुछ वीरोंके साथ चले जा रहे थे। जहाँ रात पड़ती वहीं ये पड़ाव डाल देते और रात भर विश्राम करके अगले दिन फिर आगे चल देते। एक दिन इनका डेरा आबू नदीके किनारे पड़ा। सुल्तानने स्नान करना चाहा और दोनों मित्र नदी किनारे जा पहुँचे। सुलतानने वस्त्र उतारे और वह नदीमें घुस गया। भीतर जाकर उसने देखा कि एक तख्ती पानीमें बही जा रही है। सुलतानने कौतुकवश उस तख्तीको पकड़ लिया, पर उसे पकड़ते ही उसका मुख-मण्डल फीका पड़ गया। वह नदीसे बाहर निकल आया। जब जानी चोरने यह दशा देखी तो उसने क्लेशका कारण पूछा। सुल्तानने कहा—'मित्र! अब हम भात लेकर नहीं जायेंगे। हाँ, तुम मेरे भाईके समान हो इसलिए मेरे स्थानपर तुम जा सकते हो।' सुल्तानकी बात सुनकर जानी चोरको आश्चर्य हुआ। उसने भात लेकर न जानेका कारण पूछा तो सुल्तानने वह तख्ती जानी चोरके हाथमें दे दी जिसपर लिखा था 'अदलीखाँ पठान मुझे बलात् हर लाया है और वह मेरा धर्म बिगाड़ना

चाहता है। यदि किसी वीरके हाथ यह तख्ती पड़े तो मुझे शीघ्र छुड़ाने का यत्न करे।' जानी चोर महकदेके हाथकी लिखी तख्ती देखकर एक क्षण स्तम्भित खड़ा रह गया। फिर बोला—'भाई सुलतान! आप चिन्ता क्यों करते हैं? आप भात लेकर बहन मरवणके यहाँ जाइए। आपको बिना देखे बहनको चैन न मिलेगा और मैं महकदेको छुड़ाने जाऊँगा!' सुलतान और जानी चोर दोनों मित्रोंमें बहुत देर तक इस बारेमें वाद-विवाद होता रहा और अन्तमें यही निर्णय हुआ कि सुलतान भात लेकर जाये और जानी चोर महकदेको अदलीखाँकी कैदसे छुड़ाने और दोनों मित्र वहींसे अलग हो गये।

जानी चोर जब महकदेको छुड़ाने चला तब वह कुछ दूर ही जा पाया था कि उसे चार भीलोंने घेर लिया। जानी बीचमें घिरा खड़ा था और भील कह रहे थे 'घर दे जो तेरे पास है।' जानीने धीरेसे कहा—'भाई! साँपको साँप लड़े तो किसको जहर चढ़े। तुम मेरा रास्ता छोड़ दो' पर उनमेंसे एक बोला—'जानता नहीं मैं जानी चोर हूँ। जिसका नाम सुनते ही बड़े-बड़े सेठ-साहूकारोंके दिल काँप जाते हैं?' और जानी उसकी बात सुनकर हँस पड़ा। भीलोंको उसकी हँसी पर आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसे डाँटते हुए हँसनेका कारण पूछा तो जानी बोला—'भाइयो! जिसका नाम लेकर तुम मुझे डरा-धमका रहे हो वह तो मैं स्वयं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ।' उसका इतना कहना था कि चारों भील जानीके पाँवोंपर गिर पड़े और क्षमा माँगकर जंगलमें जा छिपे। जानी उनसे निपट कर आगे बढ़ चला।

अभी वह कुछ ही दूर गया था कि उसे चार साधु आपसमें लड़ते दिखायी पड़े। जानी उनके पास गया और लड़ने-भिड़नेका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'हमारे गुरुका देहान्त हो गया है और वे अपनी करामाती चीज़ें पीछे छोड़ गये हैं। हममेंसे हर एक चाहता है कि वे चारों उसी अकेलेको मिलें।' जानी बोला—'इसमें लड़नेकी क्या बात है? मैं चारों

दिशाओं में चार तीर फेंकता हूँ, तुम चारों एक-एक तीर उठाने जाओ। जो तुममेंसे पहले लौटे वही चारों चीज़ोंका मालिक हो।' चारों साधुओंको जानीकी बात भायी। जानीने चारों दिशाओंमें चार तीर फेंके। चारों साधु उन्हें उठाने भागे और मैदान साफ़ पाकर जानी गुरुकी खंडाव पहन सब चीज़ोंको समेट आकाशमें उड़ चला। चारों साधु देखते और हाथ मलते रह गये। जानी खडांवकी कृपासे क्षणभरमें अदलीखाँ की राजधानीमें जा पहुँचा और शाही बाग़में आराम करने लेट गया।

जानी को अभी नींद आई ही थी कि घूमती-फिरती उस बाग़की मालिन आ पहुँची। उसने अनजान आदमीको शाही बाग़में सोते देखा तो आगबबूला हो गई। उसने जानीका स्वागत कोड़ोंसे किया। जानीकी आँख खुली तो वह रोने लगा। मालिनने उसका परिचय पूछा तो जानी बोला—'तूने बिना कुछ पूछे मुझे पीटा। मैं परदेशी और अभागा, आखिर मेरा दोष क्या था?' मालिनने कहा—'तू बिना पूछे शाही बाग़में घुस आया, यह दोष क्या कुछ कम है?' जानी बोला—'मुझे पता नहीं था कि उसकी सज़ा इस देशमें इस तरह दी जाती है। मैं मालीका लड़का हूँ और अपनी मौसीसे मिलने यहाँ आया हूँ। न जान, न पहचान। थका हुआ था लेट गया और लेटते ही नींद आ गई।' 'यह मालीका लड़का है' यह जानकर मालिनको अपनी भूलपर दुःख हुआ। उसने उसकी मौसीका नाम पूछा तो जानी बोला—'मैं तो छोटा-सा था जब मेरी माँ मर गई। मौसीका नाम भी चित्तसे उतर रहा है।' मालिनने इतना सुनते ही पूछा—'रे, तेरा नाम गोधू तो नहीं?' जानीने बड़े भोलेपनसे कहा 'री, तूने मेरा नाम कैसे जाना?' इतना सुनते ही मालिनकी आँखें डबडबा आईं। वह जानीसे 'बेटा गोधू!' कहती हुई लिपट गई। जब रो-धोकर मालिनका मन कुछ हलका हुआ तब वह बोली 'बेटा! मैं ही हूँ तेरी अभागिन मौसी। मैं क्या जानती थी कि मैं अपने

ही बेटेको यों भूलसे पीट रही हूँ। क्रोध न करना बेटा! मेरा नाम नथिया है। तेरी माँ तुझे छोटा-सा छोड़कर मर गई थी। तुझे मैंने गोदमें देखा था, जब मैं जोड़े लेकर गई थी। उसके बाद कभी नहीं देखा, इसीलिए पहचान न पाई। क्षमा करना बेटा! मुझसे भूल हुई।' जानी भी बेटा बना मौसीकी ओर भोलेपनसे देखता रहा। मौसी जानीको अपने घर ले गई। उसे रहनेको स्थान दिया और आनन्दपूर्वक खाना बनाकर खिलाया।

जब जानीके रहनेका ठिकाना हो गया और मौसी की उसपर कृपा-दृष्टि हुई तब उसने एक चिट्ठी लिखी और रात होते ही अदली खाँ पठानके द्वारपर उसे चिपका आया और आकर सो रहा। दूसरे दिन प्रातः जब अदली खाँ अपने महलसे बाहर आया तब उसने वह पत्र चिपका हुआ देखा, जिसपर लिखा था 'गढ़ीका रहनेवाला जानी चोर जिसका नाम देश-देशान्तरोंमें प्रसिद्ध है, तेरे नगरमें आ पहुँचा है। और वह महकदे रानीको निकालकर ले जायेगा। यदि तुझसे कुछ प्रबन्ध होता हो तो कर ले'। इस पत्रको पढ़कर अदली खाँको क्रोध हो आया। उसकी आँखें लाल हो गईं। उसकी मुट्ठियाँ भिंचने लगीं। वह सोच रहा था 'जानी चोर 'और मेरे नगरमें ? और वह भी महकदे रानीको निकालनेकी फ़िक्र में ?' अदलीखाँ अपने दरबारमें पहुँचा और उस पत्रका सारा हाल कहकर उसने एक पानका बीड़ा और खड्ग धरा और घोषणा की 'जो वीर जानी चोरको पकड़नेकी हिम्मत रखता हो वह इस बीड़ेको उठाये। उसे धन-दौलतसे मालामालकर दिया जायगा'। अदलीखाँ की बात सुनकर वहाँका वीर धम्मल सुनार अपने स्थानसे उठा और बीड़ा उठाकर चबा गया। उसने खड्ग सँभाला और प्रतिज्ञा की, कि वह जानी चोरको पकड़कर ही दम लेगा। अदलीखाँ धम्मलकी प्रतिज्ञासे बहुत प्रसन्न हुआ और धम्मल दरबारसे चला आया।

धम्मलने नगरभरमें खूब प्रबन्ध किया। कोई रास्ता ऐसा न छोड़ा

जिधरसे कोई अनजान आदमी विना पूछ-ताछके निकल सके। वह अपने प्रबन्धसे सन्तुष्ट हुआ और स्वयं सब चौकियोंकी देख-भाल करनेमें लगा।

जानी चोरके पत्र और धम्मल सुनारकी प्रतिज्ञाकी चर्चा क्षणभरमें सब जगह फैल गई। जब मालिनने यह बात सुनी तो वह बहुत घबरायी। वह जानती थी कि गोधू सीधा-सादा और अनजान है। कहीं वह फँस न जाय और उसने अपने गोधूको बुलाकर समझाया 'बेटा! इस नगरीमें न जाने कहाँसे जानी नामका चोर आया है, और आते ही यहाँके हाकिमके मकानपर चिट्ठी चिपका दी है, कि वह हाकिमकी कैदसे महकदे रानीको छुड़ाकर ले जायेगा। सो हाकिमने जानीको पकड़नेके लिए बीड़ा धरा है। और वह धम्मल सुनारने उठाया है। बेटा! धम्मल बड़ा वीर है, चाहे है भाग्यका मारा। उसकी लड़की चम्पाको बारह वर्ष हो गये अपने घर बैठे। उसका पति ब्याह कर जैसे छोड़ गया, लौटकर नहीं आया। सो बेटा! नगरमें घूमने जाना हो तो समय-कुसमय सोचकर जाना। कहीं व्यर्थ ही लेनेके देने न पड़ जायँ'। जानी मौसीकी बातोंसे डरा और उसे साथ लेकर मकानके भीतर चला गया। जानीकी चाल-ढालसे मौसी प्रसन्न और निश्चिन्त हुई।

दोपहरीके समय जब माली और मालिन अपने काममें लगे, तब जानीने अच्छा अवसर समझा और ब्राह्मणका वेश बनाकर सुनारोंके मुहल्लेमें पहुँचा। ज्योतिषीको आया देख धम्मलकी स्त्रीने उसे अपने घरमें बुलाया और लड़कीका भाग्य पूछा। जानीने बहुत कुछ ऊँच-नीच बताया और अन्तमें आश्वासन दिया कि 'चम्पाका पति आज रातको अवश्य लौट आयेगा। वह बहुत-सा धन कमाकर लायेगा। यदि वह आज न लौटा तो मैं सब पुस्तकें फाड़ दूँगा और ज्योतिषका काम छोड़ दूँगा'। जानीकी बात सुनकर चम्पा और उसकी माँ बहुत प्रसन्न हुईं और बहुत-सी दक्षिणा देकर ज्योतिषीको विदा किया। जानी वहाँसे निकलकर सीधा बाग़में पहुँचा और मौसा-मौसीके आनेसे पहले अपने स्थानपर जा डटा।

धम्मल सुनारका प्रबन्ध प्रशंसनीय था। ऐरा-गैरा कोई भी आदमी नगरमें पर नहीं मार सकता था। पर जानी भी अपना जाल बिछा चुका था। दिन छिपते ही वह सोनेके बहाने अपने कमरेमें चला गया। मौसीको विश्वास था कि ग्रामीण गोधू रातको बाहर नहीं निकल सकता। पर जानी ने अपना वेश बदला और छैला बनकर धम्मल सुनारके घरकी ओर चल दिया। मुहल्लेमें पहुँचकर उसने धम्मलका घर पूछा। जब धम्मलकी स्त्रीने उसे देखा तो वह समझ गई कि ज्योतिषीकी वाणी फल लायी। वह भागी हुई बाहर आई और आदर-सत्कारके साथ उसे घर ले गई। चम्पा भी अपने पतिको देखकर फूली न समायी। बीस वर्षकी अवस्थामें विवाह हुआ और व्याह होते ही पति छोड़कर चला गया। बारह वर्ष प्रतीक्षा करते बीतनेपर उस निर्मोहीने सुध तक न ली। आज सहसा अपने पतिको देखकर उसका प्रसन्न होना स्वाभाविक था। परस्पर मान-मनव्वल हुआ। जानी ने बड़े प्यारसे माँ-बेटीको समझाया 'मैं इतने दिनोंसे सुनारीका काम सीखने गया था और बारह वर्षमें ऐसे-ऐसे गहने बनाना सीखकर आया हूँ कि देखकर आदमी दंग रह जाये'। चम्पाने कहा 'आप सीखे होंगे, हमें क्या ? हमारे तो सभी गहने वही पुराने और देहाती ढंगके हैं।' जानी बोला 'घबराओ नहीं। तुम्हें जो-जो गहने बनवाने हों ले आओ' मैं सब नये ढङ्गसे तैयार कर दूँगा, और जब उन्हें तैयारकर लूँगा तभी मैं तुम्हारा पति होनेका दावा कर सकूँगा'। पतिको प्रतिज्ञा सुनकर चम्पा प्रसन्न हुई और भागी माँके पास गई और बोली 'माँ! जो-जो गहना नये ढंगका बनवाना हो ले आ, तेरा जमाई उसे घड़ देगा' और माँने अपने, अपनी लड़कीके और दूसरे ग्राहकोंके भी सब गहने लाकर जानीके सामने ढेर कर दिये। जानी रातको ही उन्हें नये ढंगसे बनाने बैठ गया। उसकी तो प्रतिज्ञा थी कि सब गहने नये ढंगसे बनानेके बाद ही वह चम्पाका पति कहलायेगा। भला फिर देर काहे की ? माँ-बेटी थोड़ी देर जानीके पास बैठी रहीं और फिर सोने चली गईं। इधर जानीने मैदान

साफ़ पाया तो सब सोना-चाँदी समेटा और चुपकेसे खिसक गया। वह सीधा बाग़में पहुँचा और सामान ठिकाने लगाकर अपने स्थानपर सोने चला गया।

दूसरे दिन जब माँ-बेटी जागीं तो उन्हें मेहमानका कहीं पता न चला। उन्होंने उसे इधर-उधर खोजा पर वह न मिला। अब उन्हें अपने गहनोंकी चिन्ता लगी, पर उनका भी कहीं निशान न था। उन्होंने धम्मल सुनारको दामादके आने और गुम हो जानेकी सूचना दी। गहनोंकी खबर पाकर धम्मलने अपना सिर पीट लिया। वह समझ गया कि जामाताके वेशमें जानी चोर आया और हाथ साफ़ कर गया। वह दरबारमें पहुँचा और अपनी पूरी रामकहानी अदलीखाँको कह सुनायी। पूरी बात सुनकर अदलीखाँको दुःख हुआ, पर क्या करता? उसने दूसरा बीड़ा धरा और जानी चोरको जीवित अथवा मृतक पकड़ लानेवालेको इनामका लोभ दिखाया। इस बार शहर कोतवाल सामने आया और बीड़ा उठाकर प्रतिज्ञा की कि 'वह जानीको पकड़ कर लायेगा।' अदलीखाँ ने प्रसन्नतापूर्वक कोतवालको विदा किया और नगरका प्रबन्ध कोतवालने सँभाल लिया।

धम्मल सुनार और जानी चोरकी बात सारे नगरमें फैल गई और जानीके नामसे साहूकारोंका हृदय काँपने लगा। मौसीने फिर अपने प्रिय भानजेको बुलाकर समझाया 'बेटा, जानी चोरके भयसे आज सारा नगर थरथर काँप रहा है। छलिया जानी जामाता बनकर आया और धम्मलके सब गहने लेकर रातोंरात चम्पत हो गया। हार कर धम्मलने अपना निश्चय बदल लिया और अब शहर कोतवालने उस मुएको पकड़नेका बीड़ा उठाया है।' गोधू मौसीकी बात सुनकर काँपने लगा और मौसी भानजेकी ओर से निश्चिन्त हुई।

दिन छिपा। मौसा-मौसी सो गये और जानीने अपनी मौसीका लहँगा-ओढ़ना और कुर्ता निकाला और स्त्रीका रूप बनाकर चल दिया। जब

वह चलते-चलते उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ कोतवाल स्वयं पहरा दे रहा था तब कोतवालने आवाज़ लगायी 'कौन है इतनी रात गये ?' जानीने विनती की 'मैं एक दुःखिया स्त्री हूँ कोतवाल साहब ! चार वर्षसे मेरा पति विदेश गया हुआ है और मैं कष्टके दिन आपकी राजधानीमें बिता रही हूँ। और अब अपने एक सम्बन्धीके यहाँ जा रही हूँ।' कोतवालने पहले तो उसकी बात सुनकर उसको डाँटा और फिर प्रेमभरे शब्दोंमें उससे कहा 'ऐ नेक औरत ! तू पतिके विदेश जानेसे दुःख पा रही है और मेरी औरत अल्लाहको प्यारी हुई।' कोतवालकी बात सुनकर जानी थोड़ा भयके मारे काँपा। फिर कुछ स्वस्थ होकर बोला 'दारोगाजी ! मर्द बिना स्त्रीका क्या जीना ? पर मैं ठहरी पतिव्रता, इसलिए मैं परपुरुषसे प्रेम नहीं कर सकती।' दारोगा ने उसे बहलाया-फुसलाया और धीरे-धीरे जानीको अपने साथ चलनेके लिए राज़ी कर लिया। जानीने कहा—'मर्द बेवफ़ा सुने जाते हैं। कहीं ऐसा न हो कि बादमें मैं न इधरकी रहूँ न उधरकी ?' और कोतवालने उसे विश्वास दिलाया कि 'वह कभी उससे धोका न करेगा।' जानी कोतवालके साथ हो लिया। कोतवाल सहसा स्त्रीके टकरा जानेसे मारे खुशीके आपेसे बाहर था। दोनों चलते-चलते कोतवाली पहुँचे जहाँ जानीको रोकनेके लिए काठ लगा रखा था। दारोगाने शेखी बघारी 'मैं जब जानीको पकड़ लूँगा तब उसे इस काठमें बन्द कर दूँगा।' जानीने इतना सुनते ही कहा 'क्योंजी ! इसमें बँधनेपर कष्ट तो बहुत होता होगा ? मैं अपना पाँव इसमें फँसाती हूँ, आप ताला लगा दें। मैं देखूँगी इसमें आदमी कैसे बँधता है।' कोतवाल इतना सुनकर बोला 'तुम क्यों इसमें पाँव दो ? मैं इसमें पाँव देता हूँ तुम ताला लगाकर देखो कि कैसे आदमीको इसमें बाँधा जाता है ?' इतना कहकर कोतवालने अपना पाँव काठमें दे दिया और जानीने ऊपरसे ताला डाल दिया। चाबी जेबमें डाली और जानी लौट पड़ा। कोतवाल बेचारा छटपटाता रह गया।

जानी गुरुकी खड़ाँवके सहारे उस महलमें पहुँचा जहाँ महकदे रानीको

अदलीखाँने कैद कर रखा था। उसने महकदेको बताया कि मैं ही वह जानी चोर हूँ जिसने धम्मलको लूटा और कोतवालको काठमें बन्द किया। मेरे मित्र नरवरगढ़के राजा सुलतानको तुम्हारी लिखी तख्ती नदीमें बहती मिली। उन्हें भात लेके जाना था इसीलिए उनके स्थानपर मैं तुम्हें छुड़ाने यहाँ आया। अब तुम चलनेको तैयार हो जाओ।'

महकदे जानी चोरके आनेकी चर्चा पहले ही सुन चुकी थी। जानीको देखकर उसे बहुत प्रसन्नता हुई और वह उसी समय चलनेको तैयार हो गई और दोनों खड़ाँव पर सवार होकर वहाँसे चल दिये और कुछ ही देरमें राजा सुल्तानसे जा मिले। सुल्तान अपने मित्र जानीको और महकदे रानीको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने रानी महकदेको आदर-पूर्वक उनके घर भिजवा दिया और दोनों मित्र आनन्द सहित अपने राज्यमें पधारे।

रंगीली रेशमा

रूपनगर एक छोटा-सा गाँव है, जहाँ कुछ समय पहले चन्दूलाल नामका जाट रहता था। उसके दो पुत्र थे, बड़ेका नाम सुल्ताना और छोटेका रणवीर। रूपनगरसे तीन-चार कोसकी दूरी पर एक कस्बा है जिसका नाम है कुन्दनपुर। कुन्दनपुरमें चन्दूलालका मित्र सूरतसिंह रहता था, जिसकी एकमात्र पुत्रीका नाम था रेशमा। एक दिन दोनों मित्रोंने अपनी मित्रताको स्थायी रूप देनेके लिए परस्पर सम्बन्ध जोड़नेका निश्चय किया और रेशमाका सम्बन्ध रणवीरके साथ निश्चित कर दिया।

समय बीतता गया। भाग्यकी बात कि चन्दूलाल कुछ दिन बीमार रह कर स्वर्ग सिधारा। अब रणवीरका बड़ा भाई सुलतान घरका मालिक था। पर दोनों भाइयोंकी आपसमें पटती न थी। दिन-प्रतिदिन झगड़ा बढ़ता गया और अन्तमें झगड़ेसे तंग आकर रणवीर सेनामें भर्ती होने घरसे चल दिया। उन दिनों दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ा हुआ था, और सेनाके लिए युवकोंकी बहुत ज़रूरत थी। इसलिए रणवीरको भर्ती होनेमें कोई कठिनाई न हुई। उसे भर्ती करके सैनिक-शिक्षाके स्कूलमें भेज दिया।

रणवीर ट्रेनिंग पूरी कर युद्धक्षेत्रमें चला गया। भाग्यसे उसे ब्रह्माके फ्रंट पर भेज दिया। जापानियोंने आक्रमण किया और रणवीरके बहुतसे साथी मारे गये और जो बचे उन्हें बन्दी बना लिया गया। इसी हलचलमें रणवीर भी जापानियोंके हाथ पकड़ा गया। किन्तु गलतीसे यह बात फैल गयी कि रणवीर युद्धमें मारा गया, और इसी आशयका एक पत्र सेनाकी ओरसे रणवीरके घर रूपनगरमें भेज दिया गया। जब उसके भाई सुल्तान को रणवीरके मारे जानेका समाचार मिला, तो उसे बहुत दुःख हुआ। पर

क्या हो सकता था ? उसने रणवीर की ससुराल अर्थात् कुन्दनपुरमें समाचार भिजवा दिया और सम्बन्ध समाप्त कर दिया।

रेशमाके पिताको भी रणवीरके मारे जानेका समाचार सुनकर दुःख हुआ, पर उसने रेशमाके लिए दूसरा वर खोजना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन खोज करने पर उसे एक वर मिला, किन्तु वह आयुमें कुछ अधिक था। पर पैसेवाला था और उस सम्बन्धसे रेशमाके पिताको भी लाभ हो सकता था। सो इन सब बातों पर विचार कर उसने सम्बन्ध निश्चित कर दिया। जब रेशमाको इस सम्बन्धका पता चला, तो उसे बहुत दुःख हुआ, पर वह कुछ बोल न सकी और अपने दुःखको भीतर ही भीतर पी गई।

उधर लड़ाई समाप्त हुई। रणवीर जापानियोंकी कैदसे छूटकर लौट आया और छुट्टी लेकर घर मिलने आया। घर जानेके लिए कुन्दनपुरके स्टेशन पर उतरना पड़ता था। सो वह स्टेशन पर उतरकर कुन्दनपुरके निकटसे होकर रूपनगरकी ओर चल दिया। जब वह कुन्दनपुरके निकट पहुँचा तब मारे प्यासके उसका दम निकला जा रहा था। वह पासके कूएँ पर पानी पीने चल दिया।

रेशमा अपनी सहेलियोंके साथ कूएँ पर पानी भरने आई थी। सहेलियाँ पानी भरकर कूएँसे चल दीं और रेशमा रस्सी इकट्ठी करती पीछे रह गई। इतनेमें रणवीर पानी पीनेके लिए कूएँ पर आ पहुँचा। रणवीरने पानी माँगा, और रेशमाने उसे बटोही जानकर पानी पिला दिया। इसी व्यवहारमें दोनोंका मन एक दूसरेमें अटक गया, और बात-बातमें वे आपसमें खुल गये। वहीं वे परस्पर वचनबद्ध हुए, और खेतोंमें प्रतिदिन मिलनेका प्रण किया। जब रणवीरने रेशमासे उसका नाम पूछा, तो उसने हँसी-हँसीमें अपना नाम रंगीली बताया और रणवीर वहाँसे विदा हो अपने घरकी ओर चल दिया और रेशमाने अपने घरकी राह ली, पर मन दोनोंका अपने पास न था।

जब सुलतानने भाईको जीता-जागता पाया तो उसकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा। उसने भाईका स्वागत किया, और स्वयं कुन्दनपुर जाकर रेशमाके पितासे मिला, और रणवीरके आनेका समाचार दिया। पर सूरतसिंहने कह दिया, कि मैं अपनी लड़कीका सम्बन्ध दूसरी जगह कर चुका, अब कुछ नहीं हो सकता। सुलतान निराश वापस लौट आया और रणवीरको सब घटना कह सुनाई। रणवीरका मन रंगीलीमें अटका था। वह रेशमाको क्या जाने, इसलिए उसने भाईसे कह दिया कि 'आप व्यर्थ ही कष्ट पा रहे हैं। मैं किसी रेशमा-वेशमासे विवाह नहीं करूँगा।' रणवीरकी बात सुनकर सुल्तान भी चुप हो गया। रणवीर रोज सवेरे घरसे चलकर कुन्दनपुरके खेतोंमें पहुँचता और रंगीलीसे मिलकर रंगरलियाँ मानाता और साँझ होनेसे पहले वापस घर लौट आता।

रोज-रोज कुन्दनपुर जानेके कारण रणवीरकी भाभीको अपने देवर-पर सन्देह होने लगा, और एक दिन जब किसी बातपर दोनोंका झगड़ा हो गया तो भाभीने रणवीरको लुच्चा लफंगा और आवाराकी उपाधिसे विभूषित किया और नित्य मुकुन्दपुर जानेका कारण पूछा। रणवीर इस प्रश्नसे बौखला उठा, और भाभीने एक चोट और कर दी कि 'ऐसा ही मर्द था तो अपनी मंगेतरको विवाह क्यों नहीं लाया ?' रणवीर ने उसी समय प्रण किया कि 'अब वह रेशमासे विवाह करके ही दम लेगा' और वह रंगीलीसे मिलने मुकुन्दपुरकी ओर चल दिया। जब रंगीली और रणवीर खेतोंमें मिले तब रणवीरने सीधा प्रश्न किया 'क्या तुम रेशमाको जानती हो ?' और रेशमाने पूछ लिया 'तुम्हें रेशमासे क्या काम है ?' रणवीरने पूरी घटना रंगीलीको सुना दी और अपना प्रण भी। रणवीरने रेशमासे मिलानेके लिए रंगीलीकी सहायता माँगी और रेशमाने उसे विश्वास दिलाया कि 'वह रेशमाको उसके साथ भगानेमें पूरा सहयोग देगी।' दोनों ने मिलकर पूरी योजना तैयार की, और तै पाया कि अमुक दिन जिस दिन कि रेशमाकी बारात आ रही

है, वह उसे अपने साथ गाँवसे बाहर कूएँपर लायेगी और उसे रण-वीरके साथ भाग जानेके लिये तैयार करके लायेगी। पूरी योजना निश्चित हो जानेपर रणवीर निश्चिन्त हुआ और रंगीलीसे अपने वचनपर दृढ़ रहनेका एक बार फिर वचन लेकर अपने घर लौट आया।

निश्चित समयपर रणवीर वेश बदलकर घरसे चल दिया। अपने साथ एक थैलेमें अपनी सैनिक वर्दी भी लेता गया। वह कूएँपर रेशमा और रंगीलीकी बाट जोहने लगा। निश्चित समयपर उसने देखा कि रंगीली चली आ रही है। उसे अकेली देखकर रणवीर आपेसे बाहर हो गया। वह समझा, कि अपना प्रेम बनाये रखनेके कारण वह रेशमाको साथ लेकर नहीं आई और इस प्रकार उसने रणवीरका प्रण भंग किया है। रणवीरने रंगीलीकी खूब झाड़-पछाड़ की। रंगीलीने बहुत कहा कि मैं ही वह रेशमा हूँ जिसका सम्बन्ध उससे निश्चित हुआ था। पर सदा रंगीली नामसे पुकारी जानेवालीको सहसा वह रेशमा कैसे मान लेता? उसकी कल्पनाकी रेशमा तो कोई और ही थी। वह उसकी नित्यकी जानी-पहचानी रंगीली कदापि नहीं हो सकती। और वह रुष्ट होकर वहाँसे चल दिया। रंगीली खड़ी देखती रही। उसका किसी समय परिहासमें बताया झूठा नाम आज उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो रहा था। रणवीर चला गया और रंगीलीको वहीं खड़ी छोड़ गया। जब वह रंगीलीकी आँखोंसे ओझल हो गया तब उसे होश आया और उसने अपना कर्तव्य निश्चित किया। वह अपने प्रियके बिना न रहेगी, यह उसका दृढ़ संकल्प था। पर वह कहाँ जाये? कैसे उसे विश्वास दिलाये, कि वही उसकी रेशमा है? उसी समय रंगीलीकी दृष्टि उस थैलेपर पड़ी जिसमें रणवीर अपने सैनिक वस्त्र लाया था, और क्रोधके कारण जिन्हें वह अपने साथ ले जाना भूल गया था। रंगीलीको एक बात सूझी। उसने वे वस्त्र निकाल लिए और अपना सैनिक वेश बनाकर रणवीरका पीछा किया। रणवीर वहाँसे चलकर सीधा स्टेशनपर पहुँचा और

अपनी छावनी पर पहुँचनेका निश्चय कर लिया। रंगीली भी स्टेशन पर जा पहुँची और उसी गाड़ीमें जा सवार हुई। रणवीरको यह पता भी न चला कि रंगीली उसकी पीछा कर रही है।

ये दोनों चलते-चलते एक जंक्शनपर पहुँचे, और रणवीर सैनिकोंके लिए निश्चित एक आफिसमें जा पहुँचा। पर जब अपना नाम-निशान दिखानेका अवसर आया, तो उसे ध्यान आया कि पेबुक और रेलवे पास वह रंगीलीके पास भूल आया है। निशानदेहीके पत्र पासमें न होनेके कारण उसे उलझनमें पड़े देख रंगीली वहाँ जा पहुँची और थैलेसे कागज निकालकर देते हुए कहा, कि 'ये कागज़ आप मेरे पास भूल आये थे, इन्हें सँभालिए।' अपने पत्र देखकर रणवीरकी जानमें जान आई। और उसे रंगीलीको पहचाननेमें देर न लगी। अब रंगीली और रणवीर दोनों आगे बढ़े। जब ये दोनों फिर गाड़ीमें सवार होकर आगे चले, तब कुछ दूर चलकर रणवीरको नींदने आ घेरा। रणवीर सो गया और रंगीली बैठी रही। थोड़ी देर बाद रंगीलीको प्यास लगी, और एक छोटे स्टेशनपर वह पानी पीने नीचे उतरी। अभी वह पानी पीने भी न पाई थी कि गाड़ी चल दी। रंगीली घबड़ायी। उसके हाथ-पाँव फूल गये। वह चीखती-चिल्लाती गाड़ीके साथ भागी और गाड़ी तेज़ होती चली गई। अभ्यास न होनेके कारण रंगीली चलती गाड़ीपर न चढ़ सकी। किन्तु उसकी चीख-पुकार सुनकर रणवीरकी आँख खुल गई। उसने देखा, कि रंगीली गाड़ीसे रह गई है, और साथ-साथ भागती चली आ रही है। एक क्षणके लिए वह निश्चय न कर सका, कि क्या करे क्यों न करे? नींदसे उठनेके कारण वह कुछ न सोच सका, और उसने गाड़ीसे छलाँग लगादी। दुर्भाग्यवश वह नीचे गिरते समय एक खम्भेसे टकराया और सदाकी नींद सो गया। रंगीलीने अपने प्रियकी जब यह दशा देखी तो उससे न रहा गया। उसने रणवीरकी लाश उठायी और स्टेशनके बाहर यात्रियोंके आरामके लिए बने कूएँमें लाश

सहित जा पड़ी। लोग इकट्ठे हुए। लाशें निकाली गईं और उनके पाससे मिले कागजोंके आधार पर खोज करनेसे पता चला कि दो प्रेमी वियोग न सह कर एक साथ मृत्युका आलिङ्गन कर गये। दोनोंकी पहली भेंट एक कूएँके किनारे हुई थी, और दोनोंकी कथा एक दूसरे कूएँके साथ समाप्त हुई। लोगोंने दोनोंकी समाधि उस कूएँके निकट बना दी, ताकि देखने-वालोंको उनकी प्रेम-कथाकी स्मृति दिलाती रहे।

सुमित्रा चन्द्रपाल

कहते हैं कि बम्बईमें एक सेठ रहते थे, जिनका नाम था मंगूमल। उनके पास धन-दौलतकी कोई कमी न थी। उनका एक लड़का था चन्द्रपाल। जिसका बालकपनमें कलकत्तेके सेठ सत्यवर्धनकी लड़की सुमित्रा देवीसे विवाह कर दिया गया था। सुमित्रा अपने पिताके घरमें पली और बड़ी हुई। उसका ध्यान हर समय धर्ममें रहता। वह नित्य पूजा-पाठ और हवन आदि करती। उधर मंगूमलने अपने पुत्रको विदेश पढ़नेके लिए भेजा, और वह वहाँसे बैरिस्टर बनकर लौटा। अब चन्द्रपाल और सुमित्रा दोनों युवा थे। चन्द्रपाल पत्नीको अपने घर ले आया, पर उसे सुमित्राकी धार्मिक वृत्ति पसन्द न थी। वह चाहता था ऐसी पत्नी जो उसके साथ घूम-फिर सके। क्लब और पार्टियोंमें उसका साथ दे सके, पर भारतीय वातावरणमें पली सुमित्रा उसे यह सब न दे सकी और चन्द्रपाल उससे खिचा-खिचा-सा रहने लगा।

एक दिन चन्द्रपालकी भेंट बम्बईकी प्रसिद्ध वेश्या प्रेमजानसे हो गई, और वह उस पर दिल फेंक बैठा। प्रेमजानकी बड़ी बहन चञ्चलने चिड़िया को फँसते देखा, तो उसे प्रेमजानके पास ले आई। प्रेमजान और चन्द्रपाल परस्पर प्रेमसूत्रमें बँध गये। चन्द्रपालने अपनी मानसिक स्थिति प्रेमजानसे कह सुनायी और उससे अपने मकान पर चलनेकी प्रार्थना की। पर प्रेमजान पहली पत्नीके रहते जानेको तैयार न हुई। चन्द्रपालने उसे अलग मकानमें रहनेकी प्रार्थना की, और प्रेमजान मान गई।

पतिको अपनेसे विरक्त-सा अनुभव करके सुमित्राने एक दिन चन्द्र-पालसे पूछ ही लिया कि आप रात-रात भर कहाँ रहते हैं? और चन्द्र-पाल इस प्रश्न पर बिगड़ उठा। चन्द्रपालने अपनी पत्नीको डाँटा-डपटा, और कह दिया कि 'भविष्यमें तुम्हें यह पूछनेका कोई अधिकार नहीं कि

आप कब आते हैं ? कब जाते हैं ? और क्या करते हैं ? सुमित्रा अपने पतिकी बात पर सन्न रह गई। पतिके चले जाने पर वह अपनी सासके पास गई, और हाथ जोड़ कर सब बात कह सुनायी। सासने वही बात अपने पतिसे कही, पर क्या हो सकता था ? पिताने चन्द्रपालको बहुत समझाया पर चन्द्रपालकी समझमें कुछ न आया। वह सुमित्रा पर और भी क्रुद्ध हुआ और उसे घरसे बाहर निकाल दिया।

घरसे निकाले जाने पर सुमित्राके लिए चारों ओर अन्धेरा छा गया। उसे दिखायी पड़ा, जैसे उसके चारों ओर उसकी इज़्ज़तके लुटेरे घूम रहे हैं। अब वह क्या करे ? कहाँ जाये ? कुछ सुझायी न पड़ा। अन्तमें उसने निश्चय किया और साधुका वेश धरा। अब सुमित्राने बम्बईमें ही अच्छा-सा स्थान देख कर अपनी धुनी रमा दी। वह मौन रहती। उसे अपने-आप जैसा भोजन मिल जाता, स्वीकार करती। और दिन-रात धुनी पर बैठी भजन करती। किसीने मौनी बाबाको कभी अपनी धुनीसे इधर-उधर जाते नहीं देखा। कुछ ही समयमें मौनी बाबाकी चर्चा शहर भरमें फैलने लगी। लोग मौनी बाबाकी भेंट-पूजा करते। अपनी इच्छा कागज़के पुर्जे पर लिख कर उनके सामने रख देते, और वे मौज आने पर किसीका प्रश्न पढ़ कर उत्तर लिख देते, और लोग प्रसन्न होते, गुण गाते, उठ कर चले जाते।

उधर चन्द्रपाल और प्रेमजान प्रेम-सागरमें बहे जा रहे थे। न उन्हें चढ़ेकी चिन्ता थी, न छिपेका ग़म। चन्द्रपालके प्रेमके कारण प्रेमजानने बाज़ारमें बैठना बन्द कर दिया था। किन्तु पुराने जानकार अब भी उसके मकानके आस-पास चक्कर लगाते देखे जाते। पर किसीका ज़ोर न चलता, और वे निराश लौट जाते।

उन्हीं जानकारोंमें गेंदामल सेठका लड़का मानकचन्द भी था। जो प्रेमजानको बिना देखे बेचैन रहता। जब सब लोग निराश हो गये, तब भी उसे एक आशाकी किरण दिखायी पड़ी। उसने चन्द्रपालसे मित्रता गाँठी।

और कुछ ही दिनोंमें वे गहरे मित्र हो गये। मानकचन्दके मनमें आग जल रही थी, पर चन्द्रपाल उसके धूएँको भी न भाँप सका। एक दिन चन्द्रपालको किसी आवश्यक कामसे बाहर जाना पड़ा, तो मानकचन्दने इसे स्वर्ण-अवसर जाना और वेधड़क प्रेमजानके मकानपर जा पहुँचा। द्वारपर टकटककी आवाज़ सुनकर प्रेमजान बाहर आई और मानकचन्दको खड़े देखकर एक क्षणमें सब समझ गई और उसे लताड़ दिया। मानकचन्दको प्रेमजानसे यह आशा न थी। वह तो उन दोनोंके मध्य चन्द्रपालको ही खाई समझता था, पर उसे अब पता चला कि प्रेमजान भी अब पहले जैसी नहीं रही है। वह लौट आया। उसके मनमें प्रतिक्रियाने जन्म लिया। वह प्रेमजानसे बदला लेनेकी चिन्तामें लगा। किन्तु वह जानना चाहता था, कि उसे यमलोक पहुँचानेपर मानकचन्दको तो कोई दण्ड नहीं मिलेगा? पर वह भविष्य किससे पूछे? अन्तमें उसे ध्यान आया मौनी बाबाका। और भविष्य जाननेके लिए उसने प्रेमजानके मोहमें चन्द्रपालके फँसने, और बरबाद होनेकी पूरी कथा लिखकर उस वेश्याको समाप्त करनेका अपना निश्चय मौनी बाबाके सामने प्रकट किया। और अन्तमें लिखा, कि उसे समाप्त करनेपर मुझे दण्ड भुगतना होगा अथवा नहीं'? मौनी बाबाने पत्र पढ़ा और वह मन-ही-मन प्रसन्न हुए। एक पुर्जेपर लिख दिया 'मनकी इच्छा पूर्ण करो। भगवान् भला करेंगे'। और मानकचन्द उठकर अपने घर लौट आया।

इस घटनाके दूसरे-तीसरे दिन लोगोंने सुना, कि प्रेमजानको किसी अज्ञात व्यक्तिने मार डाला। मानकचन्द भागा हुआ प्रेमजानके मकानपर पहुँचा और उसकी बड़ी बहन चञ्चलको थानेमें रिपोर्ट करनेको साथ ले गया। मानकचन्दने सब प्रबन्ध पहलेसे कर रखा था। उसने चन्द्रपालका रूमाल हथिया रखा था, और हत्या करनेके बाद वह उसे रक्तमें भरकर सीढ़ियोंमें फेंक आया था। पुलिसने उस रूमालको देखकर चन्द्रपालको ही प्रेमजानका हत्यारा माना और उसे पकड़ लिया। सहसा आई आपत्तिके

कारण चन्द्रपाल घबरा-सा गया और उसे कुछ सुझायी न दिया कि वह क्या करे ? अन्तमें मुकद्दमा चला और उसी रूमालके कारण उसे फाँसीकी सज़ा सुना दी गई।

धीरे-धीरे मौनी बाबाको भी पूरी कहानीका पता चला और चन्द्रपालके लिए दी गई फाँसीकी सज़ा सुनकर वह विचलित हो उठा। वह जानता था, कि वास्तविक हत्यारा कौन है ? और मानकचन्दका वह पुर्ज़ा जो प्रश्न पूछनेके लिए मौनी बाबाको दिया गया था, उसके पास था। मौनी बाबासे नहीं रहा गया और बरसों बाद पहली बार उसने अपना आसन त्यागा। मौनीबाबा सीधे कचहरी पहुँचे। उन्हें देखकर अधिकारियोंने भी उनका स्वागत किया और तब पहली बार बाबाने अपना मौन त्यागकर चन्द्रपालकी सफाईमें मानकचन्दका वह पुर्ज़ा पेश किया। अधिकारी लोगोंको पुर्ज़ा देखकर यह जानते देर न लगी, कि प्रेमजानका वास्तविक हत्यारा कौन है। उन्हें अपना निर्णय बदलना पड़ा, और चन्द्रपालके स्थान पर मानकचन्दको अभियुक्तके स्थान पर रखा गया।

सहसा फाँसीकी सज़ासे मुक्त हो जानेके कारण चन्दपालको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह जानना चाहता था कि वह कौन है, जिसने उसके प्राण बचाये और जब उसे मौनीबाबाकी कृपाका पता चला, तब वह भाग कर गया और मौनीबाबाके चरणोंसे लिपट गया। किन्तु मौनीबाबाने अपने पाँव पीछे खींच लिये और चन्द्रपालके चरणोंकी धूलका टीका अपने मस्तक पर लगाया। चन्द्रपालको इस व्यवहारसे अति-आश्चर्य हुआ और जब उसने जान बचानेके लिए कृतज्ञता प्रकटकी तो मौनीबाबाने कहा 'यह मेरा कर्तव्य था। क्योंकि मैं आपकी पत्नी सुमित्रा हूँ।' सुमित्राका नाम सुनकर चन्द्रपालका शरीर मारे हर्षके कण्टकित हो गया, और वह बाबाजीके गलेसे लिपट गया पति-पत्नी वर्षों बाद आपसमें मिले थे। तब चन्द्रपाल सुमित्राको आदरके साथ अपने घर लिवा लाया और दोनों मिल-कर प्रेमपूर्वक रहने लगे।

रूपकला

कहते हैं कि डिब्रूगढ़में किसी समय पण्डित दीनानाथ रहते थे। उनकी पुत्रीका नाम था रूपकला, जो अति सुन्दरी और गुणवती थी। उसकी एक सहेली थी मनियारी जो जादू जानती थी और इन दोनों सहेलियोंके साथ-साथ रहनेके कारण लोग रूपकलाको भी जादूगरनी समझते थे। रूपकलाका सम्बन्ध उसके पिताने बालकपनमें ही रंगूनमें पं० परमानन्दके पुत्र चतुरसुजानसे कर दिया था। चतुरसुजान और रूपकला धीरे-धीरे खेलते-खाते विवाहके योग्य हुए। तब भाग्यवश चतुरसुजानके पिता और रूपकलाकी माताका देहान्त हो गया। चतुरसुजानकी माँने सोचा, कि पुत्रका विवाह हो तो वह निश्चिन्त हो जाये। उसने एक दूत बुलाया और उसे आज्ञा दी कि वह डिब्रूगढ़ जाय और रूपकलाके पितासे मिलकर विवाहकी बात-चीत कर आये, और साथ ही रूपकलाके चरित्रका भी भेद लेता आये। दूत आज्ञा पाते ही तैयार होकर रंगूनसे डिब्रूगढ़के लिए चल दिया।

जब दूत डिब्रूगढ़ पहुँचा तब उसे प्यास लगी हुई थी। वह जल पीने एक कूएँ पर पहुँचा और पनिहारिनसे जल माँगकर पिया। पनिहारिनने परदेशीका पता-ठिकाना पूछा तो दूतने अपना नाम-धाम बताया और रूपकला और उसके पिता पं० दीनानाथका पता-ठिकाना पूछा। पनिहारिन ने कहा—'वही रूपकला जो जादूगरनी है! उसे जो विवाहेगा बस वह निहाल हो जायगा।' पनिहारिनका व्यंग्य सुनकर दूत सटपटाया और उसने रूपकलाके चरित्रके बारेमें और छान-बीन करनी चाही। पनिहारिनने भोलेपनसे दूतको बता दिया कि उसकी सहेली मनियारी जादूगरनी है और

ये दोनों सदा साथ-साथ रहती हैं।' दूतको इतना सुनते ही निश्चय हो गया कि लड़की ठीक नहीं।

वह रूपकलाके घर पहुँचा और उसने अपने आनेका कारण पं० दीनानाथको बताया। दीनानाथ दूतको देखकर वहुत प्रसन्न हुए और विवाह निश्चित करनेके लिए दूतके साथ रंगूनको चल दिये। किन्तु जब दूतके मुँहसे चतुर सुजानकी माँ प्रेमवतीने रूपकलाका चरित्र सुना तो वह दाँतोंतले अँगुली दबाकर रह गई और उसने दीनानाथजीसे स्पष्ट कह दिया कि इस प्रकारकी कन्या हमें नहीं चाहिए और सम्बन्ध टूट गया।

दीनानाथजी दुःखित हृदय घर लौटे और उन्होंने अपनी लड़कीको मनियारीके साथ रहनेका परिणाम बताया। रूपकलाको सब बात सुनकर वहुत दुःख हुआ पर वह क्या कर सकती थी ? उसने अपनी सासको शाप दिया कि उसे कुष्ट हो जायेगा।

रूपकलाके पिताने अपनी पुत्रीका विवाह कहीं दूसरे स्थानपर निश्चित करना चाहा, पर रूपकला नहीं मानी। उसका निश्चय था कि जिसे एक बार उसने हृदयसे पति माना है, वह उसीके साथ विवाह करेगी। नहीं तो आयु भर कवाँरी रहेगी। पिताको पुत्रीकी प्रतिज्ञासे अति कष्ट हुआ, पर वह क्या कर सकता था ? अन्तमें चुप हो गया।

रूपकलाने क्रोधमें अपनी सासको शाप दिया था जिससे स्वयं वह बेचैन-सी रहने लगी। वह देखना चाहती थी कि उसका वाक्य कहाँ तक सफल हुआ। इसलिए उसने अपनी सहेली मनियारीको अपने साथ रंगून चलनेके लिए कहा, क्योंकि मनियारी अग्निबोट चलानेमें कुशल थी और जैसे-तैसे मनियारीको साथ चलनेके लिए हाँ करनी पड़ी। दोनों सहेली साधुका वेश बनाकर घरसे चल दीं और कुछ समय बाद वे रंगून जा पहुँचीं। और कुछ औषधियाँ साथ लेकर रंगूनकी गली-गलीमें चक्कर काटने और लोगोंका इलाज़ करने लगीं। धीरे-धीरे चतुर सुजानकी माँको

भी इन विचित्र साधुओंका पता चला। प्रेमवती कुष्ट रोगसे पीड़ित थी, इसलिए वह साधुओंकी शरणमें गई, और उसका इलाज़ करनेकी प्रार्थना की। रूपकलाने बातों-बातोंमें सब जान लिया कि यही उसकी सास है, और उसका शाप फलीभूत हुआ है। रूपकलाने कहा 'माता जी! आपका इलाज हमारे पास नहीं, बल्कि डिब्रूगढ़के पं० दीनानाथकी पुत्री रूपकलाके पास है। उसीके शापसे आपको यह रोग हुआ है और उसीकी कृपासे यह दूर भी हो सकता है। सो आप जैसे भी बने उसे बुलाइए और उसीसे इलाज करवाइए।' इतना कह कर रूपकलाने अपनी सासको विदा किया और स्वयं वे दोनों फिर डिब्रूगढ़ लौट आईं।

चतुर सुजान उस समय विवाह करवाने बारात लेकर पाण्डुघाट गया हुआ था। जब विद्यावतीको विवाह कर चतुर सुजान लौटा, तब माँने बेटेसे कहा 'पुत्र! यदि तू मेरा रोग दूर करना चाहता है, तो मेरा एक कहना मान।' मातृभक्त चतुर सुजानने काम पूछा, तो उसने महात्माकी बात कह सुनायी, और रूपकलाको जैसे भी बने लानेकी आज्ञा दी। चतुर सुजान डिब्रूगढ़ जानेको तैयार हो गया, किन्तु जब उसकी पत्नी विद्यावतीको पता चला तो वह रोती-चिल्लाती अपने पतिके पास दौड़ी आई। भला वह कैसे अपनी सौतको लाने पर प्रसन्न हो सकती थी? और वह भी तब, जब कि उसे ससुराल आये एक ही दिन बीता हो। वह रोई-पीटी, पर चतुर सुजान न माना। उसे माँका कुष्ट अवश्य दूर करना था। वह उसका परम कर्तव्य था। इसलिए पत्नीको रोते-धोते छोड़ डिब्रूगढ़की ओर चल दिया।

जब वह डिब्रूगढ़ पहुँचा तब उसने सोचा कि वह रूपकलाके सामने क्या मुँह लेकर जाये? अन्तमें सोच-समझकर उसने पहले रूपकलाकी सहेली मनियारीसे मिलनेका निश्चय किया। और जब वह उसे खोजता मनियारीके सामने पहुँचा तब वह रो दिया। मनियारीने रोनेका कारण

पूछा, तो चतुर सुजान बोला—'मेरा नाम डेढ़ छैल है और मेरे माता पिता मर चुके हैं। मेरा कोई आश्रय नहीं। मैं क्या करूँ?' चतुर सुजानकी बातें सुनकर मनियारीको दया आ गई। मनियारीके कोई सन्तान न थी, इसलिए उसने डेढ़ छैलको अपना धर्मपुत्र बनाकर अपने पास रख लिया।

दो चार दिन बाद डेढ़ छैलने मनियारीसे कहा—'माँ! आप मुझे चूड़ियाँ दें तो उन्हें बेच आऊँ?' मनियारीके मना करते रहने पर भी वह चूड़ियाँ लेकर बेचने चल दिया। वह चलते-चलते रूपकलाके मकानके सामने पहुँचा। रूपकला अपने मकानकी छत पर खड़ी थी। मनियारको देखकर उसने आवाज़ दी, पर चतुर सुजानने मकानके ऊपर जानेसे इनकार कर दिया। रूपकलाने ऊपर आनेकी ज़िद की, तो चतुर सुजान ऊपर चला गया। रूपकला चूड़ियाँ पसन्द करने बैठी, तो चतुर सुजानने चर्चा छेड़ी—'सुन्दरी! तेरा विवाह हो चुका कि नहीं?' और जब उसे पता चला कि अभी वह कंवारी है, तो उसने कंवारी रहनेका कारण पूछा। रूपकलाने बता दिया, कि उसका सम्बन्ध रंगूनमें चतुर सुजानसे निश्चित हुआ था, पर बादमें उन्होंने इनकार कर दिया। इसलिए मैंने विवाह नहीं किया। चतुर सुजान बोला 'तब तूने किसी और से विवाह क्यों न कर लिया?' रूपकलाने अपने मनकी बात कह दी, कि जिसे उसने एक बार वर चुन लिया, वह उसीसे विवाह करेगी। नहीं तो जीवन भर कंवारी रहेगी।' चतुर सुजानने उसे छेड़नेके लिए कहा 'क्या ही अच्छा हो यदि हम दोनोंका विवाह हो जाय?' रूपकलाको इस बातसे दुःख पहुँचा, और उसने मनियारको लताड़ दिया। चतुर सुजान रूपकलाकी बातसे ज़िद्द पकड़ बैठा। और जब रूपकलाने देखा, कि यह दुष्ट सीधे हाथों माननेवाला नहीं, तब उसने शोर मचा दिया। इधर-उधरसे लोग आ जुटे। और उसे तिरस्कृत करके वहाँसे निकाल दिया। चतुर सुजान मनियारीके पास लौट आया।

अगले दिन मनियारी अपनी सहेलीसे मिलने चली तो चतुर सुजानने भी साथ चलनेकी ज़िद्द की। मनियारीने पहले तो उसे मना किया, पर जब वह न माना और उसने रूपकलाको देखनेका हठ किया, तो मनियारी ने कहा 'यदि तुम साथ चलना चाहते हो, तो स्त्री वेशमें चल सकते हो'। चतुर सुजान मान गया। वह स्त्रीका रूप बनाकर मनियारीके साथ चल दिया। रूपकलाने उसे देखते ही मनियारीसे पूछा 'आज साथ कौन है'? तो मनियारीने कहा 'मेरी देवरानी है। इसे तुमसे मिलानेके लिए लायी हूँ'। इतनी बात सुनकर रूपकला बहुत प्रसन्न हुई। चतुर सुजानको बैठनेके लिए मूढ़ा दिया और तब बैठकर बातचीत करने लगी। थोड़ी देर रुककर मनियारी चलनेको तैयार हुई तो रूपकलाने उसकी देवरानीको छोड़ जानेके लिए कहा। मनियारी नहीं चाहती थी कि वह वहाँ रुके। पर जब रूपकलाने बहुत ज़िद्द की, तो मनियारी चतुर सुजानको छोड़कर अपने घर लौट आई।

मनियारीके चले जानेपर रूपकलाने चतुर सुजानके साथ चर्चा आरम्भ की। रूपकलाने पूछा 'तुझे क्या-क्या काम आता है'? तो चतुर सुजानने कहा—'मैं अग्निबोट चलाना बहुत अच्छा जानती हूँ'। रूपकला बोली 'और तेरा नाम क्या है'? तो चतुर सुजानने अपना नाम 'नखरो' बताया। रूपकलाने नखरोसे कहा 'तब चलो अग्निबोटकी सैर कर आयें।' और वे दोनों उठकर चल दीं। नदी किनारे उनकी अपनी अग्निबोट खड़ी थी। वे दोनों उसमें जा बैठीं। नखरोने अग्निबोट चलानी आरम्भ कर दी। अब दोनोंकी बात-चीत आरम्भ हुई। नखरोने पूछा 'रूपकला! सुना है तूने विवाह नहीं करवाया। भला, क्यों'? और तब रूपकलाने आदि से अन्त तक सब कथा नखरोको कह सुनायी। नखरोने सुनकर फिर कहा 'यदि चतुर सुजानसे विवाह न हो सका तो इसका मतलब यह नहीं कि जीवनभर कंवारी रहा जाये। तुम्हें किसी और से विवाहकर लेना चाहिए'। पर रूपकला अपनी बातपर अड़ी थी और उसने नखरोको अपना नपा-

तुला उत्तर सुना दिया। नखरो बातों-ही-बातोंमें अग्निबोट बहुत दूर ले आई थी और वह बहुत तेज़ चल रही थी। रूपकलाने पूछा 'नखरो! हम कहाँ पहुँच गये हैं? और कहाँ तक घूमनेका विचार है'? तब चतुर सुजानने कहा 'रूपकला! मैं नखरो-बखरो नहीं। मैं तो कल वाला मनियार हूँ। ले, पहचान'। और उसने स्त्री वेश उतार दिया। अब रूपकला क्या करे? वह सहम-सी गई। उसने अपनी सहेलीको दोषी ठहराया, जिसने उसे धोकेमें फँसाया और रोना-पीटना आरम्भ कर दिया। चतुर सुजान समझ गया कि रूपकला सत्यपर अटल है और उसे त्यागकर उसने पाप किया है। तब उसने रूपकलाको सान्त्वना दी और कहा 'घबराओ नहीं रूपकला! मैं ही वह चतुर सुजान हूँ, जिसने तुम्हें त्यागकर तुम्हारे साथ अन्याय किया था। मुझे खेद है, कि विना सोचे-समझे मैंने तुम्हें त्याग दिया।' रूपकला यह जानकर बहुत प्रसन्न हुई। पर उसने पूछा कि 'तुम सीधे हमारे घर न पहुँच कर यों धोकेसे मुझे क्यों लाये? लोग जानेंगे तो क्या कहेंगे'? तब चतुर सुजानने कहा—'रूपकला! इस तरह एक तो तुम्हारे सत्यका मुझे विश्वास हो गया। दूसरे सीधा तुम्हारे यहाँ जानेका मेरा कौन मुँह था? अब मैं सीधा तुम्हें अपने घर ले जाऊँगा, और वहीं हम दोनोंका विवाह होगा। और तब हम आनन्दसे रहेंगे'। चतुर सुजान रूपकलाको सीधा रंगून ले गया और उसके साथ विवाह कर लिया। रूपकलाने अपनी सासकी सेवा-शुश्रूषा की और उसे कोढ़से फिर मुक्तकर लिया और सब लोग आरामसे रहने लगे।

लीलो चमन

कहते हैं कि लाहौरमें महताबराय नामके एक व्यक्ति रहते थे, जिनकी कन्याका नाम लीलावती था। और उसे सब लोग प्यारसे लीलो कहकर पुकारा करते। लीलावती अति सुन्दरी थी और कालेजमें पढ़ती थी। एक दिन जब कि वह कालेज जा रही थी, वहींके सेठ धनपालका लड़का चमनलाल जो एम० ए० में पढ़ता था, सहसा उसे रास्तेमें मिल गया। एक दूसरेको देखते ही दोनोंका मन बेकाबू हो गया और धीरे-धीरे दोनों का मिलना-जुलना आरम्भ हो गया। चमनलालके दो भाई और थे देवानन्द और कृष्ण जो उससे छोटे थे।

लीलावती और चमनलालका मिलना-जुलना बढ़ता गया और एक दिन ऐसा आया कि एक दूसरेको देखे बिना दोनोंको कल न पड़ती। धीरे-धीरे लीलावतीकी सहेलियों और चमनके मित्रोंको इस प्रेम-सम्बन्धका पता चला और उन्होंने दोनोंको बहुत समझाया, पर इनपर उसका कुछ प्रभाव न हुआ। और परस्पर एक दूसरेके प्रेममें दोनों बहते चले गये।

चमनलालने एम० ए० कर लिया और उसे बम्बईमें सरकारी नौकरी मिल गई। अब चमनका बम्बई जाना निश्चित था। जब लीलावतीको इस घटनाका पता चला तब वह बहुत रोई, कल्पी, पर क्या हो सकता था ? चमनने उसे विश्वास दिलाया कि वह उसे बराबर पत्र लिखता रहेगा और शीघ्र ही वह उसे लौटकर मिलेगा। चमनलाल लाहौर छोड़कर बम्बई चला गया और दोनों एक-दूसरेके विना तड़पते रहे।

चमनका भाई देवानन्द कुसंगी था। चमनलाल बम्बईसे जो भी रुपया घर भेजता, देवानन्द उसे यार-दोस्तोंमें बैठकर शराब पीनेमें उड़ा देता, और धीरे-धीरे घरकी दशा खराब होती गई। जिसका चमनलाल

को कतई पता नहीं चला। उधर लीलावती और चमनका प्रेम-व्यवहार पत्र द्वारा चलता रहा।

तभी आया जगत्प्रसिद्ध सन् १६४७। संसारने देखा कि अखण्ड भारत दो भागोंमें बँट गया। दो कौमोंके आधारपर नक्शोंमें एक नया देश उभरा और लाखोंकी संख्यामें मनुष्योंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर प्रवासी रूपमें जाना पड़ा। इस गड़बड़में लूट-पाट, मार-काट और अग्नि-काण्ड अपना अलग दृश्य दिखा रहे थे। पड़ौसी-पड़ौसीके रक्त का प्यासा हो रहा था। महतावराय और धनपालके परिवार भी लाहौर छोड़कर भागे, पर चमनलालका छोटा भाई कृष्ण उसी मार-काटकी भेंट हो गया। लीलावती कालेजसे लौटती कुछ गुण्डोंसे घिर गई, और वह अपनी जान बचानेके लिए साथके एक घरमें घुस गई। उस घरका मालिक भाग्यसे वेहद शरीफ निकला। उसने उन गुण्डोंसे लीलावतीकी रक्षा की और उसे अपने घर पुत्रीके समान रखा। पर वह उस गड़बड़के कारण अपने घर न लौट सकी। इसीलिए वह भी अपने परिवारसे बिछुड़ गई। चमनका दूसरा भाई देवानन्द वेश बदलकर वहीं लाहौरमें रहने लगा। परिवारके शेष लोग अमृतसर पहुँचकर एक कैम्पमें रहने लगे।

इधर चमन लाल इस गड़बड़की कथा समाचार पत्रोंमें पढ़-पढ़कर विचलित हो रहा था। उसे कुछ पता न था कि उसका परिवार कहाँ है। उसकी प्रिया लीलावती जीवित भी है या नहीं। कि तभी उसे उसकी माताका पत्र मिला और तुरत अमृतसर पहुँचकर अपनी माँ और लीलावतीके परिवारसे मिला। जब उसे लीलावतीके कालेजसे न लौटनेकी घटनाका पता चला तो वह लाहौर जाकर उसे खोज लानेके लिए तैयार हो गया। यह भी विश्वास किया जा सकता था कि वह मारी जा चुकी हो, पर चमन लालका मन कह रहा था कि वह सुरक्षित है और वह उसकी प्रतीक्षा कर रही है। सो चमन लाल अमृतसरसे चलकर लाहौर पहुँच गया।

अब यह प्रश्न सामने आया कि पर्देमें रहनेवालोंमें लीलावतीको कैसे खोजा जाय। बहुत सोच-विचारके बाद उसने पटवेका वेश धरा और कंघी, चोटी, अंगूठी, बालियाँ आदि लेकर चल दिया। वह गली-गली आवाज़ लगाता 'कंघी लो, चोटी लो, अंगूठी और बाली लो।' वह दर-दर घूमता फिरा पर कहीं लीलावतीका पता न चला। वह निराश होता जा रहा था। उसे विश्वास होता जा रहा था कि लीलावती मारी जा चुकी है। पर फिर उसका मन कहता कि नहीं वह सुरक्षित है, और वह फिर गली-गली मुहल्ले-मुहल्लेका चक्कर काटना आरम्भ कर देता।

एक दिन घूमते-घामते उसे उसका छोटा भाई देवनान्द दिखायी पड़ा। दोनोंके प्रेमने ज़ोर मारा और दोनों एक दूसरेसे लिपट गये। एक ओर बैठकर दोनोंकी बात-चीत हुई। चमन लालने पूरा हाल देवानन्दको कह सुनाया। देवानन्दने अपने भाईको समझाया कि लीलावतीको पाना जान जोखमका काम है। किसीको थोड़ा सन्देह भी तुम पर हो गया तो जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा, पर चमनने अपना निश्चय नहीं बदला। उसने स्पष्ट शब्दोंमें अपने भाईसे कह दिया कि वह बिना लीलावतीके यहाँसे आयु भर न लौटेगा। जब देवानन्दने अपने भाईका दृढ़ संकल्प देखा तो उसने कहा 'लीलावतीका पता-ठिकाना तो मैं जानता हूँ, पर उससे मिलना मेरे बसका रोग नहीं है। चमन लालको यह सुनकर प्रसन्नता हुई। उसने देवानन्दको पता बतानेके लिए कहा शेष काम वह स्वयं कर लेगा और देवानन्द अपने भाईके साथ जाकर वह घर बता आया, जहाँ वह रहती थी।

थोड़ी देर बाद चमन लाल उसी गलीमें पहुँचा और ज़ोर-ज़ोरसे आवाज़ लगाने लगा। जब चमनकी जानी-पहचानी आवाज़ लीलावतीके कानोंमें पड़ी तो वह अपना सन्देह मिटानेके लिए ऊपरसे झाँकी और चमनको देखते ही पहचान गई, और आवाज़ देकर उसे ठहरा लिया। चमन उसके द्वार पर जा पहुँचा।

जब कंघी, चोटी खरीदनेके बहाने लीलावती पर्देकी ओटमें आई तब दोनोंकी खुलकर बात-चीत हुई। और संक्षेपमें उसने अपना आनेका कारण बताया, पर लीलावतीको योजनाकी सफलतामें सन्देह था। मुहल्ले भरकी आँखोंमें धूल झोंककर यों किसीके साथ भाग निकलना कोई आसान काम न था। पर चमनलालने उसे समझाया कि वह दिन छिपते ही कार लेकर आयेगा, इसलिए लीलावती उस समय चलनेको तैयार रहे। जैसे ही कारका हार्न बजे, वह आकर कारमें बैठ जाये और हुआ भी वैसा ही। सांझके झुटपुटेमें जब सब लोग अपने-अपने काममें लगे हुए थे, तब हार्नकी आवाज़ लीलावतीके कानोंमें पड़ी, और वह बहाना करके बाहरकी ओर आई और आते ही कारमें जा बैठी। कार चल दी, और गलियोंके चक्कर काटती खुली सड़क पर आ पहुँची।

चमनलाल लीलावतीको साथ लेकर सकुशल अमृतसर पहुँच गया। लीलावतीके परिवारके लोग इतने दिनों बाद अपनी पुत्रीको देखकर फूले न समाये। लीलावतीने चमनलालके साहसकी चर्चा अपनी माँसे की, और वहाँ की सब घटना उसे कह सुनायीं। माँ आँखोंसे पानी ढुलकाती जा रही थी और पुत्रीकी दुःख भरी बातें सुनती जा रही थी।

लीलावतीकी माँने अपने पतिसे पुत्रीके विवाहकी चर्चा की, किन्तु प्रश्न यह था कि इतने दिनों दूसरेके घरमें रही, लड़कीको कौन स्वीकार करेगा। पर लीलावतीकी माँने इस प्रश्नका हल पहलेसे ढूंढ रखा था। उसीके कहनेके अनुसार चमनलालके परिवारसे बात-चीत की गई। सगाई की रसम पूर्ण हुई और शुभ मुहूर्तमें विवाहका कार्य भी सम्पन्न हुआ। लीलावती अपने माता-पिता और भाई-बहनको छोड़कर चमनलालके घर पधारी। चमनलालका घर प्रसन्नतासे खिल उठा और अब दोनों मिलकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी
मौलिक साहित्यका निर्माण

संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन

सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी